प्रथम अंक

कृषि जीवन

जनवरी-जून, 2019

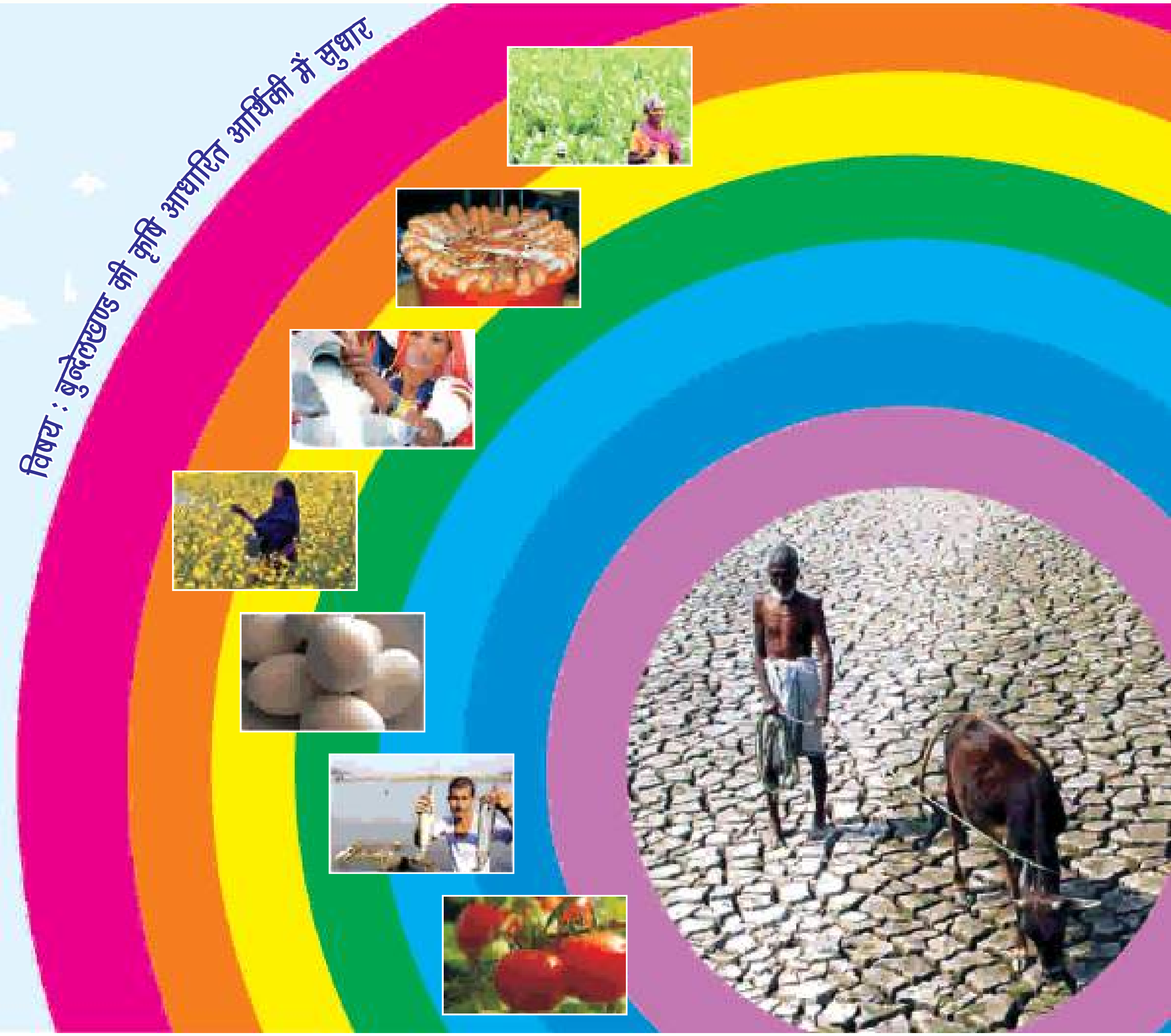

रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय
झाँसी-284 003, उत्तर प्रदेश (भारत)

कृषि जीवन

अंक - 01, संख्या -01
जनवरी, 2019

संरक्षक
डॉ. अरविन्द कुमार
कुलपति

मुख्य संपादक
डॉ. अनिल कुमार
निदेशक शिक्षा

संपादक सलाहकार
डॉ. एस.के. चतुर्वेदी
(अधिष्ठाता कृषि संकाय)
डॉ. ए.के. पाण्डेय
(अधिष्ठाता कृषि एवं वानिकी)
डॉ. ए.आर. शर्मा
(निदेशक शोध)
डॉ. मुकेश श्रीवास्तव
कुलसचिव
डॉ. कुसुमाकर शर्मा
सलाहकार

संपादक मण्डल
डॉ. एन.के. सिंह
डॉ. दिनेश पाण्डेय
डॉ. सुप्रिया गुप्ता
(गो.ब.पं.कृ. एवं प्रौ.वि.वि., पंतनगर)
डॉ. रमेश सिंह
(के.कृ.अनु.सं., झाँसी)
डॉ. मीनाक्षी आर्य
डॉ. प्रभात तिवारी
डॉ. अमित तोमर
(रा.ल.बा.के.कृ.वि.वि., झाँसी)

पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं विचार लेखकों के अपने निजी है। संपादक, प्रकाशक की सहमति और उत्तरदायी होना अनिवार्य नहीं है। लेख में लेखक का पूरा पता प्रकाशित किया जाता है। अतः कोई भी जानकारी लेखक से भी ली जा सकती है।

निदेशक शिक्षा
ई–मेल : directoreducation.rlbcau@gmail.com

सूची

कुलपति जी की कलम से

संपादकीय : क्यों जरूरी है? सर्व सुलभ-समृद्धि कृषि अभियान

इस अंक में :

1. भूख है मजहब इस दुनिया का और हकीकत कोई नहीं।
2. मृदा – जीवन का आधार : बुन्देलखण्ड में मृदा की स्थिति एवं सुधार के उपाय।
3. नवोन्मुखी अनुसंधान तकनीक से फसल उत्पादन बढ़ाने की सम्भावनायें।
4. बुन्देलखण्ड में सरसों की वैज्ञानिक तरीके से खेती।
5. ग्रीष्मकालीन मूँग की उन्नत कृषि कार्यमाला।
6. बुन्देलखण्ड क्षेत्र में अरबी से आय।
7. बुन्देलखण्ड क्षेत्र के लिये उन्नत सब्जी पौध तैयार करना।
8. बुन्देलखण्ड के लिए उद्यानिकी में संभावनायें।
9. फल–सब्जियों के पेय पदार्थ।
10. बुन्देलखण्ड में उन्नत पशुपालन की समस्यायें एवं समाधान।
11. बुन्देलखण्ड में व्यवसायिक मुर्गीपालन को उन्नतिशील बनाने हेतु सम्भावनाऐं।

द्वारा प्रकाशित : शिक्षा निदेशालय,
रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी - 284003 (उत्तर प्रदेश) भारत
कॉपीराइट. रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी

कुलपति जी की कलम से..............................

भारत की अर्थव्यवस्था में कृषि का स्थान अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। देश के कुल निर्यात व्यापार में कृषि उत्पादित वस्तुओं का प्रतिशत काफी अधिक रहता है। भारत में आवश्यक खाद्यान्न की लगभग सभी पूर्ति कृषि के माध्यम से ही की जाती है। वर्तमान समय में भी एक बहुत बड़ी आबादी को कृषि के माध्यम से रोजगार प्राप्त है। यह ऐसे में बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाता है, जबकि देश में बेरोजगारी की समस्या दिन–प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। लगभग 70% भारतीय लोग किसान हैं। किसान भारत के रीढ़ की हड्डी है एवं देश की प्रगति एवं खाद्यानों की खुशहाली में विशेष सहायक होते है। खाद्य फसलों और तिलहन का उत्पादन करते हैं। वे वाणिज्यिक फसलों के उत्पादक है। वे हमारे उद्योगों के लिए कच्चे माल का उत्पादन करते है। बड़े किसानों का यद्यपि सुधार हुआ है, छोटे भूमि धारकों और सीमांत किसानों की हालत अब भी संतोषजनक से भी कम है। कृषि उत्पादन में वृद्धि पूर्व में जन–वृद्धि दर से भी कम रही। इसी कारण 1975 तक देश की खाद्य समस्या जटिल बनी रही। निम्न स्तर पर सीमित विकास के बावजूद आज भी भारतीय कृषि परम्परावादी है। भारतीय किसान खेती व्यवसाय के रूप में नहीं करता है, बल्कि जीविकोपार्जन के लिये करता है। कृषि की पुरानी परम्परागत विधियों, पूँजी की कमी, भूमि सुधार की अपूर्णता, विपणन एवं वित्त संबंधी कठिनाइयों, आदि के कारण भारतीय कृषि की उत्पादकता अत्यन्त न्यून है। जब तक किसानों में जागरूकता नहीं होगी तब तक किसानों की दशा में सुधार करना बहुत कठिन है। मेरा स्पष्ट मत है कि हमारा विश्वविद्यालय 'प्रबुद्ध कृषक – समृद्ध बुन्देलखण्ड' का ध्येय लेकर किसानों में नई–नई तकनीकों के प्रसार में अपना कार्य द्रुत गति से करेगा और विभिन्न आयामों के माध्यम से हमारा विश्वविद्यालय बुन्देलखण्ड के वंचित किसानों को उन्नतशील एवं समृद्ध बनाने में सतत प्रयासरत है।

कृषि बहुसंख्यक कृषकों के लिये न केवल जीवन–निर्वाह का स्रोत वरन् देश की जीवन–रेखा व सफल उद्यम के रूप में स्थापित हो, इसके लिये बहुत कुछ किया जाना शेष है। सर्वप्रथम, कृषि के लिये एक समग्र व एकीकृत रणनीति की आवश्यकता है, जिसके लिये कृषि को समवर्ती सूची का विषय बनाने का सुझाव भी प्रस्तुत किया जाता है। साथ ही, भूमि पट्टेदारी संबंधी कानूनों में सुधार, सार्वजनिक–निजी मॉडल के द्वारा भंडारण, विपणन, संचार, सड़क, बाजार संबंधी अवसंरचना का विकास, सिंचाई प्रबंधन तथा जलवायु परिवर्तन आधारित बीमा योजना का विकास, गुणवत्तापूर्ण बीज, उर्वरक व कीटनाशकों का विकास, सरल व सस्ती तकनीक को बढ़ावा तथा दक्ष आपूर्ति श्रृंखला का विकास जैसे क्षेत्रों में ईमानदारी पूर्वक क्रियान्वयन कर कृषि को लाभकारी बनाया जा सकता है। इसके अलावा, उत्तर–पूर्व क्षेत्र की कृषि क्षमता का दोहन, न्यूनतम समर्थन मूल्य को लाभकारी बनाकर, ई–मंडी, ई–बाजार, ई–सूचना आदि को सुविधाजनक रूप से बढ़ावा देकर तथा मत्स्यपालन, पशुपालन, मधुमक्खी पालन आदि का प्रशिक्षण व सब्सिडीयुक्त ऋण देकर तथा वैकल्पिक रोजगार द्वारा आय को बढ़ावा देकर भी कृषि व कृषक दोनों को एक सम्माननीय मुकाम हासिल हो सकता है जो अंततः राष्ट्र की प्रगति में सहायक होगा।

कृषि जीवन पत्रिका का प्रथम अंक इस दिशा में एक सकारात्मक पहल है, जो कृषक, विद्यार्थियों एवं वैज्ञानिक वर्ग को कृषि के नए अनुसंधान एवं इससे जुड़े रोचक तथ्यों से परिचय कराने में मदद करेगा।

डॉ. अनिल कुमार, निदेशक शिक्षा एवं समस्त सम्पादक मण्डल के इस दिशा में किये गये प्रयास अत्यंत सराहनीय हैं।

(अरविन्द कुमार)
कुलपति

सम्पादकीय

क्यों जरूरी है? सर्व सुलभ–समृद्धि कृषि अभियान

प्राचीनकाल से ही भारत देश के विकास में कृषि का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। भारत देश विविधता से भरा हुआ है जहाँ न केवल भाषा, प्रान्त, खान–पान में ही विविधता परिलक्षित होती है अपितु देश के जलवायु एवं मौसम में विविधता के कारण भी विभिन्न भागों में बाँटा गया है। इसी विविधता की विशेषता को विकास के नये–नये आयामों एवं समृद्धशाली कृषि की ओर उन्मुख कर, देश एवं प्रदेशों की आर्थिक स्थिति एवं किसानों की माली हालत को सुधारने में किया जा सकता है। आज की खेती से देश अन्न उत्पादन में आत्म निर्भर तो हो गया है परन्तु पोषक असुरक्षा से मानव – स्वास्थ्य खतरे में है। अतः ऐसी चुनौतियों को केवल आधुनिक विज्ञान की तकनीकों के प्रयोग के साथ, परम्परागत तकनीकों को प्रयोग एवं परम्परागत एवं संरक्षित खेती में छिपे हुये गुणों एवं प्रभावों का वैज्ञानिक अध्ययन करना भी अत्यन्त जरूरी है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि हम समन्वित रूप से सर्व सुलभ–समृद्धि कृषि प्रणालियों को विकसित करें जो न केवल खाद्य सुरक्षा अपितु पोषण एवं स्वास्थ्य सुरक्षा से जुड़ी समस्याओं का हल प्रदान करें।

सर्व सुलभ – समृद्धि कृषि का प्रयास सभी के सहयोग से, प्रकृति के नियमानुसार लोगों की उत्तम एवं नवोन्वेशी सोच से, अपना पूर्ण कालिक समय देकर उत्तम कृषि की नयी नयी प्रणालियों को विकसित किया जा सके, जो समृद्धि कृषि के लिये नये–नये आयामों को विकसित कर सके। वास्तव में कृषि–जीवन जो लगभग समस्त जन समुदाय के साथ पर्यावरण की सुरक्षा से भी जुड़ा है अतः विज्ञान की नई विधाओं के माध्यम से प्रकृति के नियमों के अनुरूप, प्रकृति का दोहन एवं संरक्षण करना भी बहुत जरूरी है। हम सब प्रकृति का भरपूर उपयोग तो कर रहे है लेकिन प्रकृति की गरिमा के अनुकूल, उसे हम उसी गति से लौटा नहीं पा रहे है। आज जन–समुदाय के जीवन से जुड़ी कृषि की आधुनिक तकनीकें कही विनाशकारी न हो जाये और इससे पर्यावरण के साथ जीवन के अस्तित्व को भी चुनौती मिलने लगे उससे पहले हमें जागरूक होकर समग्र कृषि की ओर ध्यान देना होगा। प्रकृति से लेकर प्रकृति को लौटाना भी होगा। अतः हमें संरक्षित खेती के साथ परम्परागत खेती में भी विज्ञान एवं तकनीकों को खोजना होगा। सभी समस्याओं का हल केवल एकल प्रणाली ही नहीं है, अपितु देश, काल परिस्थिति एवं जलवायु के अनुसार, समृद्धि कृषि प्रणालियों को भी अपनाना होगा। गिरती हुयी मृदा की उर्वरा शक्ति, पानी एवं वायु की गुणवत्ता और पर्यावरणीय असंतुलन जिससे जैव विविधता का क्षीण होना मुख्य है एवं बढ़ता हुआ शहरीकरण इत्यादि मुख्य एवं ज्वलन्त समस्यायें है।

इन जीवन के महत्वपूर्ण तत्वों में बढ़ते हुये प्रदूषणीय प्रभावों को रोकने के लिये ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है हमें बुन्देलखण्ड एवं अन्य दूरूह क्षेत्रों में जैविक खेती के साथ जीरो–बजट खेती के प्रोत्साहन एवं उसमें छिपे वैज्ञानिक समाधान को भी देखने की जरूरत है। ऐसे क्षेत्रों का जैविक कॉरीडार के रूप में विकसित कर पर्यावरण एवं वातावरणीय बदलाव के प्रभावों को भी कम किया जा सकता है। इस क्षेत्र में पोषक एवं स्वास्थ्य गुणों से भरपूर दलहन तिलहन एवं मोटे अनाजों के अतिरिक्त फलों एवं सब्जियों की पैदावार के साथ उनके प्रसंस्करण से मूल्यवर्धित पदार्थों से कृषि प्रसंस्करण क्षेत्र में रोजगार विकसित करने की अपार संम्भावनाये छिपी है। नयी–नयी तकनीकों का विकास जो पर्यावरण के अनुकूल हो एवं उनकी सर्व–सुलभता अर्थात तकनीकों का आसानी से अनुप्रयोग एवं उपलब्धता सुनिश्चित हो तो निश्चित रूप से समृद्धि कृषि से न केवल किसानों अपितु उपभोक्ताओं एवं उद्यमियों के विकास के साथ राष्ट्र निर्माण में अपनी सक्रिय भूमिका का निर्वहन कर सकेंगे। मुझे आपके हाथों में विश्वविद्यालय की पत्रिका 'कृषि जीवन' के प्रवेशांक को सौंपते हुए अपार हर्ष की अनुभूति हो रही है, क्योंकि नवोदित विश्वविद्यालय के पाँच वर्ष के अत्यन्त छोटे अन्तराल में ही छात्रों की उत्तम शिक्षा एवं किसानों के कल्याण हेतु अपनी राष्ट्रीय गरिमा के अनूरूप कार्य कर रहा है। आशा है कि इस छोटे से प्रयास से बुन्देलखण्ड की कृषि आर्थिक के सुधार में हमारे वैज्ञानिकों, संकाय सदस्य अपने किसान उपयोगी लेखों के माध्यम से करते रहेंगें।

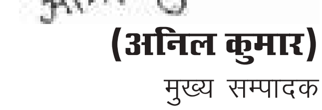

(अनिल कुमार)

मुख्य सम्पादक

विषय सूची

क्रं.स.	विषय पेज	नं.
1.	प्रकृति मेरी माँ – "भूख है मजहब इस दुनियां का और हकीकत कोई नहीं" *वी.के. सचान*	1
2.	मृदा– जीवन का आधार : बुन्देलखण्ड में मृदा की स्थिति एवं सुधार के उपाय *सुनैना बिष्ट और अनिल कुमार*	4
3.	नवोन्मुखी अनुसंधान तकनीक से फसल उत्पादन बढ़ाने की सम्भावनयें *स्नेहा अधिकारी, अंजलि जोशी, नरेन्द्र कुमार सिंह एवं सितार सिंह वर्मा*	8
4.	बुन्देलखण्ड में सरसों की वैज्ञानिक तरीके से खेती *सुनील कुमार जाटव, अनिल कुमार राय एवं आशुतोष शर्मा*	13
5.	ग्रीष्मकालीन मूँग की उन्नत कृषि कार्यशाला *प्रतीक सनोडिया*	17
6.	बुन्देलखण्ड क्षेत्र में अरबी से आय *हरपाल सिंह, अमित तोमर, प्रदीप कुमार बरेलिया एवं प्रभात तिवारी*	20
7.	बुन्देलखण्ड क्षेत्र के लिये उन्नत सब्जी पौध तैयार करना *डी.के. उपाध्याय, अमित तोमर, प्रभात तिवारी एवं ए.के. पाण्डेय*	23
8.	बुन्देलखण्ड के लिए उद्यानिकी मे संभावनायें *रंजन श्रीवास्तव एंव रश्मि पंवार*	27
9.	फल–सब्जियों के पेय पदार्थ *घनश्याम अबरोल*	29
10.	बुन्देलखण्ड में उन्नत पशुपालन की समस्यायें एवं समाधान *डॉ. ए.बी. मजूमदार, कमल कटियार' एवं डॉ. राकेश कुमार''*	35
11.	बुन्देलखण्ड में व्यवसायिक मुर्गीपालन को उन्नतिशील बनाने हेतु सम्भावनाऐं *गोविन्द कुमार चौधरी एवं एस.पी. सिंह*	37

प्रकृति मेरी माँ – "भूख है मजहब इस दुनिया का और हकीकत कोई नहीं"

वी.के. सचान

मनुष्य का भूख से, भूख का भोजन से, भोजन का कृषि से और कृषि का प्रकृति से बहुत गहरा रिश्ता है। आशय यह है कि मनुष्य जीवन की सम्पूर्ण खुशियाँ प्रकृति की संवृद्ध व्यवस्था पर निर्भर करती है। इसी लिए प्राचीन काल से ही मनुष्य को ब्रम्हा, विष्णु और महेश की पूजा करने के लिए प्रेरित किया जाता रहा है। जहाँ पर और जिस समय तक मनुष्य इस विषय को समझता रहा है उसके जीवन में खुशियाँ बरकरार बनी रही है। प्रकृति का मतलब पृथ्वी के आस–पास के संवृद्ध वातावरण से है।

कृषि उत्पादन में ब्रम्हा, विष्णु एवं महेश यह क्या है–

ब्रम्हा, प्राणवायु, पेड़–पौधे, नभचर

धरती का बीस से पच्चीस प्रतिशत भू–भाग पेड़–पौधों से ढका होना चाहिए एवं उन पेड़–पौधों पर नाना प्रकार के पक्षी होने चाहिए। ब्रम्हा का मतलब पेड़–पौधों से है जो हमे दिन भर में लगभग इक्कीस हजार बार स्वांश लेने के लिए आक्सीजन देते है।

विष्णु, जल, छीर सागर, जलचर

धरती के लगभग चार से पाँच प्रतिशत भू–भाग पर जलाशय होने चाहिए तथा जलाशयों में नाना प्रकार के जलचर होने चाहिए। पानी का मतलब जलाशयों से है जो हमे दिन में बीस बार पीने का शुद्ध पानी उपलब्ध कराते है, विष्णु का वास छीर सागर में है।

महेश, पृथ्वी, भोजन, थलचर

भूमि की कोख की उर्वरता को निरंतर बनाये रखने के लिए उसमें जैव अवशिष्ट को सड़ा कर डालते रहना चाहिए और प्रयास करना चाहिए कि भूमि में लगभग एक प्रतिशत जीवांश कार्बन बना रहे ताकि भूमि में रहने वाले नाना प्रकार के जीवों एवं सूक्ष्म जीवों को अनवरत भोजन मिलता रहे। पृथ्वी से मुझे भोजन मिलता है। पृथ्वी शिव का स्वरूप है कहते भी है कि शिव भगवान ने दुनिया का सम्पूर्ण विष पी लिया था। यानि कि पृथ्वी मनुष्य द्वारा विसर्जित होने वाला सम्पूर्ण कचरा हजम करके मनुष्य को नाना प्रकार की खाद्य सामग्री उपलब्ध कराती है।

चौथी वस्तु आकाश है जो जीव जगत की प्रत्येक इकाई को गति प्रदान करता है और ऊँचाइयों तक उड़ने के अवसर उपलब्ध कराता है। पाँचवीं वस्तु सूर्य है जो जीव जगत की प्रत्येक इकाई को ऊर्जा प्रदान करता है। पृथ्वी पर उपलब्ध समस्त ऊर्जा अथवा ईंधन का स्रोत सूर्य ही है। समस्त प्रकार की वनस्पतियाँ सूर्य की उपस्थिति में ही फोटोसिन्थेसिस करके जीव जगत के लिए भोजन का निर्माण करती है ।

छिति, जल, पावक, गगन, समीर पंच तत्व मिल बना शरीरा

आखिर संवृद्ध वातावरण का क्या मतलब है ?

1. **भूमि की उर्वरता–** कृषि योग्य भूमि में तीन गुण पाए जाते है। जिसमे पहला गुण है भूमि के जैवीय गुण– जैवीय गुणों का मतलब है कि भूमि में रहने वाले नाना प्रकार के जीव एवं सूक्ष्म जीवद्य दूसरा भूमि के भौतिक गुण– मतलब भूमि में पानी को सोखने और पानी को रोकने की सामर्थ्य कितनी है तथा उसमे वायु संचार कैसा है। तीसरा गुण है रसायनिक गुण – मतलब भूमि में फसलों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की उपलब्धता कैसी है?

इधर पिछले पचास वर्षों से हम सब भूमि के रसायनिक गुणों का विश्लेषण करने में लगे है और भूमि की जाँच करके यह पता करते है कि भूमि में नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश, सल्फर, जिंक, कैल्शियम आदि तत्वों की मात्रा कितनी है। यदि किसी पोषक तत्व की मात्रा कम है तो उसकी पूर्ति के लिए किस रसायनिक उर्वरक की कितनी मात्रा खेत में प्रयोग की जाये, ताकि फसल की पैदावार अच्छी मिल जाये। इमानदारी से देखा जाये तो यह विधा टिकाऊ कृषि और मानव जीवन की खुशहाली के लिए उचित नहीं है।

2. **भूमि में जल–** रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून। पानी मिले न उबरे, मोती मानस चून। यानि पानी के बिना कुछ नहीं है। जब तक भूमि में नमी नहीं होगी उसमे किसी भी फसल का बीज नहीं जमेगा। अतः भूमि के चार से पाँच प्रतिशत क्षेत्रफल में सतही जल के भंडार का होना बहुत जरूरी है। जब किसी क्षेत्र में सतही जल के भंडार होते है तो फिर उस क्षेत्र में फसलों को पानी देने की जरुरुत बहुत कम होती है क्योंकि वहाँ पर भूमिगत जल स्तर 30–40 फीट पर होता है और ओसमोसिस क्रिया के द्वारा यह पानी ऊपर आकर फसलों की जड़ों की प्यास को बुझा देता है ।

3. **भूमि में पेड़–** सभी लोग जानते है कि पानी का मुख्य स्रोत वर्षा है और वर्षा का सम्बन्ध पेड़ों से है। जिन क्षेत्रों में बीस–पच्चीस प्रतिशत क्षेत्र फल मेंहरे–भरे वन क्षेत्र होते है वहाँ पर वर्षा 1000–1200 मिली मीटर तक मिल जाती है। परन्तु जहाँ जैसे–जैसे हरे–भरे जंगलों का क्षेत्रफल कम होने लगता है वर्षा कम होने लगती है और फिर पानी का संकट प्रारम्भ होने लगता है।

उप निदेशक कृषि, कृषि विभाग, उत्तर प्रदेश
ई–मेल : sachanjhansi@gmail.com

क्र.सं	पर्यावरण के विन्दु	1950 के दशक में स्थिति	2010 के दशक में स्थिति
1–	भूमि में जीवांश कार्बन	0.52	0.30
2–	सतही जल का क्षेत्रफल	2.7	0.9
3–	वन क्षेत्रफल	26.7	6.8
4–	थलचरकी उपस्थिति	पर्याप्त	नगण्य
5–	जलाशयों में जलचर	पर्याप्त	नगण्य
6–	नभ में नभचर	पर्याप्त	नगण्य

ऊपर जिन आँकड़ों को प्रस्तुत किया गया है उनमें से भूमि में जीवांश कार्बन, सतही जल के भंडार और वन क्षेत्र के आँकड़ें लगभग सही है। परन्तु थलचर, जलचर और नभचर के सम्बन्ध में कोई सटीक आँकड़े उपलब्ध नहीं है। मैंने स्वयं देश के विभिन्न राज्यों के लगभग दो सौ गाँवों के लोगों से पूछताछ करके एवं स्वयं अपनी आँखों से जो देखा है उसके अनुसार जो स्थिति है उसके अनुसार अपनी बात रखी है। नभचरों की संख्या के सम्बन्ध में एक बात कहना चाहता हूँ कि आज से चालीस वर्ष पूर्व जब किसी किसान को अपने अनाज को धूप में सुखाना होता था तो एक किसी व्यक्ति को अनाज की रखवाली के लिए बैठना पड़ता था, परन्तु आज अनाज को खाने के लिए पक्षी नहीं आते है। ठीक इसी प्रकार पहले गाँव में जिन लोगों को मछली खानी होती थी वह अपने गाँव के तालाब से मछली मार लेते थे परन्तु आज किसी भी गाँव में तालाब में मछलियाँ नहीं है। थलचर के संबंध में भी यही अनुमान है पहले जब हम सभी शौच क्रिया के लिए खेत में जाते थे तब वह शौच एक अथवा दो दिन में ही मिट्टी बन जाता था यानि मल को खाकर ह्यूमस में बदलने वाले अनेकों जीव एवं सूक्ष्म जीव हुआ करते थे जबकि आज मल वहीं महीनों पड़ा रहता है। इन सभी बातों को लिखने का उद्देश्य मात्र यह है कि मनुष्य को प्रकृति के इन पैरामीटर को समझना पड़ेगा और आने वाली संतानों की खुशियों के लिए प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण तथा जैव विविधता के संवर्धन की दिशा में सोचना पड़ेगा।

पिछले पचास वर्षों में आधुनिक कृषि तकनीकी, आधुनिक जीवन शैली एवं आधुनिक विकास की दूषित परिभाषा के चलते आज भूमि की उर्वरता नष्ट हुई है, सतही जल के भंडार खत्म हुए है और अब भूगर्भ जल समाप्त होने को है। देश के अधिकांश जंगल काटे जा चुके है और इनका प्रभाव यह हुआ है कि थल के थलचर, जल के जलचर और नभ के नभचर लगभग विलुप्त होने की कगार पर पहुँच गये है।

किसी भी जीव का जन्म तो उसकी माँ की कोख से होता है किन्तु बड़ा होने पर उसके लालन–पालन का सम्पूर्ण दारोमदार प्रकृति की सम्पन्न व्यवस्था पर ही निर्भर करता है। देखा जाए तो "भूमि" हम सब के जीवन का केंद्र बिन्दु है। क्योंकि जलाशय और पेड़ भी भूमि के उपर ही निर्भर है। मनुष्य को दो वक्त की रोटी के लिए कृषि पर निर्भर रहना पड़ता है। फसलों के उत्पादन लिए हम बीज को भूमि कि कोख में बोते है। एक पौधा भूमि के ऊपर उगता है और पोषक तत्वों के साथ–साथ अपनी पानी की जरूरत भूमि से ही पूर्ण करता है। विश्व में कृषि ही एक ऐसा विषय है जिसके आगे "संस्कृति" शब्द का उपयोग हुआ है। वास्तव में प्रकृति एक ऐसा विषय है जिसके अच्छे अथवा बुरे परिणाम का खामियाजा मानव जाति के साथ–साथ जीव जगत के प्रत्येक प्राणी को झेलना पड़ता है। देखा जाये तो मनुष्य को प्रकृति की समस्त जड़ एव चेतन इकाइयों के साथ मिल कर परस्पर तामें जीना होता है।

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः"

मानव जीवन की सम्पूर्ण खुशियों का उतरदायित्व प्रकृति की व्यवस्था पर निर्भर करता है किन्तु पिछले पचास वर्षों से कृषि से जुड़े समस्त लोगों ने प्रकृति की व्यवस्था को नजरंदाज किया है बस यही कारण है किशस्य श्यामला भूमि की उर्वर कोख आज बंजर होने की कगार पर है। सतही जल के भंडार सूख चुके है हरे–भरे वन क्षेत्र लगभग समाप्त हो चुके है। आज बढती आबादी को भरपेट भोजन उपलब्ध कराने के लिए जिन कृषि तकनीकियों पर काम हो रहा है उससे पर्यावरण की स्थिति और बिगड़ती जा रही है। गाँव में रहने वाला किसान भी रसायन मिला भोजन खाने को मजबूर है। यह बात तो मनुष्य को समझनी ही पड़ेगी की प्रकृति की व्यवस्था से दूरी बनाकर फसलों के उत्पादन एवं पशुपालन जैसे विषयों पर जो भी तकनीकी विकसित कर रहे है उससे दूरगामी अच्छे परिणाम नहीं प्राप्त हो सकते है। वर्तमान समय में मनुष्य अपनी जरूरतों को पूर्ण करने के लिए प्राकृतिक संसाधनों का और जैव विविधता का दोहन कर रहा है। यही कारण है कि आज फसलों के उत्पादन में नाना प्रकार के रसायनिक उर्वरकों का एवं फसल सुरक्षा रसायनों का प्रयोग वर्ष दर वर्ष बढ़ता जा रहा है। प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करते हुए एवं फसलों के उत्पादन में रसायनों का प्रयोग करते हुए देश में खाद्यान्न उत्पादन में 2000 के दशक में ही आत्म निर्भर बन चुका था। किन्तु आज लागत बढ़ती जा रही है और उत्पादकता रुकी हुयी है कुछ फसलों की उत्पादकता तो गिरने लगी है। यही नहीं, प्राप्त उत्पादन में उन रसायनों की मौजूदगी

दिखाई दे रही है जो हमनें फसलों के उत्पादन में प्रयोग किये थे। अधिकांश लोग इस बात को स्वीकार करते है कि अब किसी भी भोजन में वह स्वाद नहीं रह गया है जो आज के चालीस वर्ष पहले हुआ करता था। अस्पतालों में बीमार लोगों की बढ़ती भीड़ इस बात का प्रमाण है कि आज हम जो खा रहे है, वह खाने योग्य नहीं है।

हम सभी को ईमानदारी से यह बात स्वीकार करनी होगी कि प्रकृति मेरी "माँ" है यदि हमने यह स्वीकार कर लिया तो फिर यह समझने की जरूरत भी होगी कि यदि "माँ" स्वस्थ्य है तो उसे किसी भी रसायनिक दवाओं की जरूरत नहीं होती है किन्तु जब वह बीमार हो जाती है तो फिर उसे इलाज की जरूरत होती है। अब जब प्रकृति की किसी भी इकाई के उपचार की बात हो तो उपचार भी प्राकृतिक होना चाहिए। बस हम सबने यही भूल कर डाली कि माँ के उपचार में रसायनों का उपयोग करने लगे। और सत्य बात यह है कि नीति निर्माताओं से लेकर कृषि के जानकारों को "माँ" के उपचार की चिंता कम अपितु अपने स्वार्थ की चिंता अधिक है।

प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण एवं जैव विविधिता के संवर्धन के काम को प्राथमिकता देना इसलिए और आवश्यक हो जाता है क्योंकि हमारे देश में विश्व की कुल भूमि का हिस्सा मात्र 2.4 प्रतिशत है जबकि विश्व की 17 प्रतिशत आवादी निवास करती है–

हमारे देश का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल लगभग 32.56 करोड़ हेक्टर है जिसमे से कृषि योग्य क्षेत्रफल मात्र 14.30 करोड़ हेक्टर है। ऐसी दशा में देश की नीतियों को चाहिए कि प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और जैव विविधिता के संवर्धन जैसे कार्यों पर विशेष नीतियां बनाने पर ध्यान दें, क्योंकि गाँव खेत और खलिहान को मजबूत किये बिना ग्रामीण क्षेत्रों में स्वरोजगार के अवसर नहीं बढ़ाये जा सकते है। पढ़े–लिखे ग्रामीण युवाओं को शहरों रोजगार नहीं उपलब्ध कराए जा सकते है। कृषि प्रधान देश रोजगार के अवसर भी कृषि क्षेत्र में ही तलाशने होंगे। आज देश के 12 करोड़ किसान अपनी 14.30 करोड़ हेक्टर कृषि योग्य भूमियों में फसलों के उत्पादन में लगभग 3.00 लाख करोड़ रूपये मूल्य के रासायनिक उर्वरक एवं फसल सुरक्षा रसायन उपयोग करते है जबकि देश की कुल कृषि उपज का मूल्य लगभग 9.00 लाख करोड़ रूपये ही है। इन रसायनिक उर्वरकों एवं फसल सुरक्षा रसायनों के प्रयोग से प्राकृतिक संसाधन एवं जैव विविधिता नष्ट होती जा रही है। मैं देश के किसानों एवं बुद्धिजीवियों से अनुरोध करता हूँ कि हालात को समझें और आने वाली पीढ़ियों के उज्ज्वल भविष्य के निर्माण की दिशा में आगे बढ़ें। गाँव हमारा है, खेत हमारा है, पर्यावरण हमारा है परन्तु कुछ व्यवसायी आपके गाँव, खेत, खलिहान और पर्यावरण को लूटने के साथ–साथ आपकी मेहनत की कमाई का सम्पूर्ण हिस्सा भी आपसे लूट रहे है। विचार करना कि आज के पचास वर्ष पूर्व आपके अपने बैल आपके खेतों की जुताई करते थे। अपने घर का बीज आप अपनी जमीन पर बो देते थे। कुछ फसलों को छोडकर आपकी कोई भी फसल सिंचाई नहीं माँगती थी, और न ही किसी फसल को रसायनिक उर्वरक देने की जरूरत पडती थी। यहीं नहीं तब फसलों में कोई कीट और बीमारियों का प्रकोप भी इतना नहीं होता था। यानि कि जो भी पैदा होता था उसमें लागत के नाम पर सिर्फ गाँव के उन भूमिहीन परिवारों को अनाज देना पड़ता था, जो आपके साथ हर काम में कंधे से कंधा मिलाकर चलते थे। परन्तु आज गाँव के भूमिहीन परिवार देश के बड़े–बड़े महानगरों में दो वक्त की रोटी के लिए भटकते दिखाई पड़ते है। क्योंकि रसायन आधारित फसल उत्पादन प्रणाली में किसान को इतना नहीं बचता है जिससे वह किसी एक व्यक्ति को रोजगार दे सके। भौतिकवादी युग का इंसान प्रकृति में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों एवं जैव विविधिता को लूट कर जीवन की खुशियाँ तलाश रहा है। मनुष्य यह बात भली–भांति जानता है कि रोटी और पानी उसके जीवन में सबसे अनमोल वस्तु है, परन्तु जाने–अनजाने वह रोटी और पानी का स्वरूप ही खराब करता जा रहा है। मनुष्य के जीवन की सम्पूर्ण खुशियाँ प्रकृति की सम्पन्न व्यवस्था पर ही निर्भर करती है। आज भौतिक वादी युग का इन्सान प्रकृति को सोने का अंडा देने वाली मुर्गी समझ रहा है और अपने जीवन में ही उसकी कोख से सब कुछ लूट लेने वाला काम कर रहा है। वह यह भूल गया है यह सोने का अंडा देने वाली मुर्गी जब जिन्दा रहेगी तभी उसकी आने वाली संतानों को भी को भोजन मिल पायेगा। अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लालच में मनुष्य ने भूमि की उर्वर कोख को बंजर बना डाला। जलाशयों का सम्पूर्ण पानी पी गया। अब भूमिगत जल को पी जाने के प्रयास में लगा है। यही नहीं देश के अधिकाँश जंगलों को काट कर खा गया। आज न थल में थलचर बचे है, न जल में जलचर बचे है और न ही नभ में नभचर दिखाई पड़ते है। अब समय आ गया है कि हम सब को अपने निजी स्वार्थों से ऊपर उठकर प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण का तथा जैव विविधिता के संवर्धन का काम करना होगा। ताकि मनुष्य को जीवन यापन के लिए जरूरी उपहार निरंतर प्राप्त होते रहे। फसलों के उत्पादन में जब हम बीज को भूमि के गर्भ में बोते है और जब बीज जम जाता है तब दो तीन दिन तो उसका लालन–पालन बीज में संचित ऊर्जा से होता है। फिर जैसे ही दो पत्तियाँ निकल आती है वह सूर्य की रोशनी और क्लोरोफिल से स्वयं भोजन निर्माण करने लगता है। यानि किसी भी फसल का उत्पादन भूमि की उर्वरता और सुंदर जलवायु पर निर्भर करता है। कृषि में जल का मतलब जलासय से है जिसे अध्यात्मिक भाषा में हम विष्णु कहते है। वायु का मतलब पेड़ों से है जिन्हें हम ब्रम्हा कहते है। भूमि का मतलब धरती की उर्वर कोख से है जिसे हम शिव कहते है।

मृदा- जीवन का आधार : बुन्देलखण्ड में मृदा की स्थिति एवं सुधार के उपाय

सुनैना बिष्ट और अनिल कुमार

किसानों द्वारा ज्यादा रासयनिक खादों और कीड़ेमार दवाइयों के इस्तेमाल से वातावरण में प्रदूषण फैलता है और मिट्टी की गुणवत्ता में अत्यन्त कमी आती है। मिट्टी का प्रदूषण न केवल हमारी मिट्टी की पोषकता को कम करता है अपितु मनुष्य एवं अन्य जीवों में बीमारियों की बढ़ोत्तरी भी करता है। मिट्टी की गुणवत्ता को सुधारने के लिए किसानों, नीति निमार्ताओं एवं कृषि वैज्ञानिकों को एकजुट होकर दृढ़ संकल्प करना चाहिए ताकि हम इस समस्या का समाधान निकाल सके। मृदा के पोषक गुणवत्ता को सुधारने के लिए आधुनिक वैज्ञानिक विधियों जैसे की नैनो टैक्नोलोजी, राइजोस्फीयर इन्जीनियरिंग, जैविक कृषि, सूक्ष्म और अति सूक्ष्म पोषक प्रबन्धन को बढ़ावा देना चाहिए। इससे न केवल रसायनों के उपयोग में कमी आयेगी बल्कि निरंतर प्रयोग से मिट्टी की उपजाऊ क्षमता में वृद्धि भी होगी और यह वातावरण के लिए लाभकारी भी है।

मृदा जीवन का आधार है। इसकी महत्वता अत्यन्त प्राचीन समय से ही हम सभी जानते रहे हैं। ये हमारा भारत देश ही है जहाँ हम धरती माँ की सुबह पूजा कर के उठते है। लेकिन आज इन सभी जीवनदायी प्राकृतिक संसाधनों की गुणवत्ता में बेतहाशा कमी आई है। खेती में अन्धाधुंध रसायनों का प्रयोग एवं खेती के तौर तरीकों और वातावरण में हुये बदलाव का असर मिट्टी, पानी एवं वायु पर पड़ा है। हमारे देश में स्वंतत्रता से पहले कृषि उत्पादन मात्र 50 मिलियन टन था। जो कि पूर्णतः कार्बनिक खेती के रूप में उत्पादन किया जाता था। लेकिन हमारा देश अन्न उत्पादन के लिये दूसरे देशों पर निर्भर था एवं अन्न का आयात करना पड़ता था। हमारे देश के नीति निर्माताओं एवं कृषि वैज्ञानिकों ने आधुनिक कृषि तकनीकी का उपयोग करके एवं बौनी गेहूँ की किस्मों से साठ सतर की दशक में प्रथम हरित क्रांति से देश को अन्न उत्पादन में आत्म निर्भर बना दिया ।

आज हमनें कृषि उत्पादन 285 मिलियन टन प्राप्त कर लिया जो कि स्वतंत्रता के बाद लगभग 6 गुना है। आज हम सभी क्षेत्रों जैसे अन्न, मछली, दूध, अण्डा इत्यादि में पहले या दूसरे या तीसरे पायदान पर विश्व में खड़े है। इस सभी में किसानों एवं कृषि वैज्ञानिकों का अभूतपूर्व योगदान है। लेकिन दूसरी ओर इस धरती माँ की कोख से अत्यन्त उत्पादन एवं दोहन करने से मृदा की गुणवत्ता निरन्तर खराब होती जा रही है मृदा में पोषक तत्वों का अभाव होता जा रहा है।

मृदा के कुछ तथ्य

- मृदा, वायुमंडल से तीन गुना ज्यादा कार्बन सोखती है जो हमें वातावरणीय जलवायु परिवर्तन से बचाती है।
- 815 मिलियन लोगों में पोषकता की कमी है जिसे मृदा के माध्यम से ही दूर किया जा सकता है।
- 95% खाद्य हमें मिट्टी से मिलता है।
- विश्व की 33% मृदा खराब हो चुकी है।

मृदा में पाये जाने वाले लाभकारी जीवाणुओ एवं जीव–जन्तुओं की कमी से गुणवत्ता अत्यन्त खराब हो चली है। जिसके दुष्प्रभाव आज न केवल फसल उत्पादन, मछली उत्पादन, पशुपालन इत्यादि पर पड़ रहा है। अपितु कृषि उत्पादों की गुणवता एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी से इसका मानव स्वास्थ्य पर भी विपरीत प्रभाव पड़ा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने पोषक तत्वों की कमी से होने वाली विभिन्न बीमारियाँ जो कि आयरन, आयोडीन, प्रोटीन एवं विटामिन की कमी से होती है, के बारे आगाह किया है। अतः आज आवश्यकता है कि हम सब धरती माता की ओर ध्यान दें और मृदा की गुणवत्ता बढ़ाने हेतु एकीकृत प्रबंधन एवं समन्वियत प्रयास करे।

भारत में मृदा की स्थिति

भारत के बहुत से भागों में उपजाऊ मिट्टी बंजर एवं किसानों द्वारा ज्यादा रासयनिक खादों और कीड़ेमार दवाईयों के इस्तेमाल से मिट्टी की गुणवत्ता में अत्यन्त कमी आई है। वैसे तो मिट्टी में दूषित पदार्थो को फिल्टर करने और प्रदूषण के नकरात्मक प्रभावों को कम करने और क्षीण करने की क्षमता है; परन्तु ये क्षमता भी सीमित है। सन् 2050 तक हमारी आबादी 9 अरब तक पहुँचने की उम्मीद है और मृदा प्रदूषण ना केवल हमारी मिट्टी की पोषकता को कम

रानी लक्ष्मीबाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी–284003, उत्तर प्रदेश
ई–मेल : directoreducation.rlbcau@gmail.com; anilkumar.mbge@gmail.com

करता है अपितु हम जो खाते है, पानी पीते है एवं जिस हवा में सांस लेते है उसे भी विषैला करता है। अधिकांश प्रदूषण मानव गतिविधियों से उत्पन्न होता है जैसे की अस्थिर खेती प्रथाओं, औद्योगिक और खन्न, शहरी कचरा और अन्य गैर पर्यावरण अनुकूल प्रथाओं से होता है।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में मृदा के प्रकार एवं मृदा की स्थिति

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में चट्टान की अभेद्य परत, जो कि 6–15 मीटर गहराई पर पाई जाती है; जिसके ऊपर कई प्रकार की मिट्टी पाई जाती है। यह मिट्टी 2 श्रेणियों में बाँटी गई है – लाल और काली मिट्टी। इन दोनों श्रेणियों कि मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ काफी कम पाये जाते है। लाल मिट्टी जिसे स्थानीय रूप से "पथरी" कहा जाता है, ग्रेनाइट की परत के ऊपर पाई जाती है और लौह पदार्थ की मात्रा के आधार पर पीले या भूरे रंग की होती है।

यह मिट्टी पोटाश में समृद्ध है पर इसमें फास्फेट व नाईट्रोजन की कमी है। इसलिए इसे खेती के लिए उपयुक्त नहीं माना जाता है, हालाकि इसमें पेड़ की कुछ किस्में उगायी जाती है। लाल मिट्टी कि एक पीले, हल्के रंग की किस्म है जिसे "परूआ" कहा जाता है जो रेतीली होती है और इसमें क्ले की मा़त्रा अधिक है। यह मिट्टी अच्छी तरह से वातित है और आसानी से पानी सोख लेती है। परूआ मिट्टी गेहूँ की खेती के लिए अनुकूल है और उत्तर प्रदेश के बुन्देलखण्ड क्षेत्र में पाई जाती है।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में दो प्रकार की काली मिट्टी पाई जाती है। पहली जिसे "कबर" के नाम से जाना जाता है जो कि मध्य प्रदेश की कपास काली मिट्टी जैसी दिखती है। इसका रंग गहरे काले से भूरे या हल्के भूरे रंग का होता है। इसमें क्ले की मात्रा ज्यादा होती है जो कि नमी को बरकरार रखता है और जल्द ही सूखकर कठोर हो जाता है। उत्तर प्रदेश में यह ललितपुर, जालौन, बाँदा और हमीरपुर के कुछ हिस्सों में पायी जाती है और मध्य प्रदेश के सागर, दमोह, सोनार में पायी जाती है। यह मिट्टी चना और ज्वार की खेती के लिए उपयुक्त है। दूसरी किस्म की काली मिट्टी जिसे "मार" कहा जाता है या आमतौर पर काली कपास मिट्टी कहा जाता है। इस मिट्टी में क्ले की मात्रा ज्यादा होती है और जल भराव होने का खतरा भी रहता है। इस मिट्टी में अपेक्षाकृत उच्च कार्बनिक पदार्थ होते है जिससे की उर्वरकों के उपयोग के बिना फसल लगायी जा सकती है। हालाकि इसमें खेती करने के लिए सावधानी बरतने की जरूरत है क्योंकि जुलाई के महीने में या तो मिट्टी बिल्कुल सूख जाती है या फिर अधिक गीली हो जाती है। लाल और काली मिट्टी के अलावा कुछ "लोमी" और "एल्यूमिनयम" मिट्टी के प्रकार नदी के किनारे पाये जाते है। इसमें "रैंकर" किस्म पथरीली है और खड्ड भूमि की ढलान वाली सतेह पर पाई जाती है और सिंचाई की सुविधा उपलब्ध होने पर ज्वार, तिल और बाजरा की खेती के लिए उपयुक्त है। "रैंकर" मिट्टी की एक किस्म जिसे "मोटीरैंकर" कहा जाता है जोकि टीकमगढ़, झाँसी और बाँदा जिलों में पायी जाती है इस मिट्टी को सही समय पर सिंचाई करके खेती के लिए उत्पादक बनाया जा सकता है। नदी के तलहटी के किनारे "कच्चर" और "तारी" मिट्टी पाई जाती है जो कि तरबूज और अन्य सब्जियाँ उगाने के लिए उपयोग की जाती है।

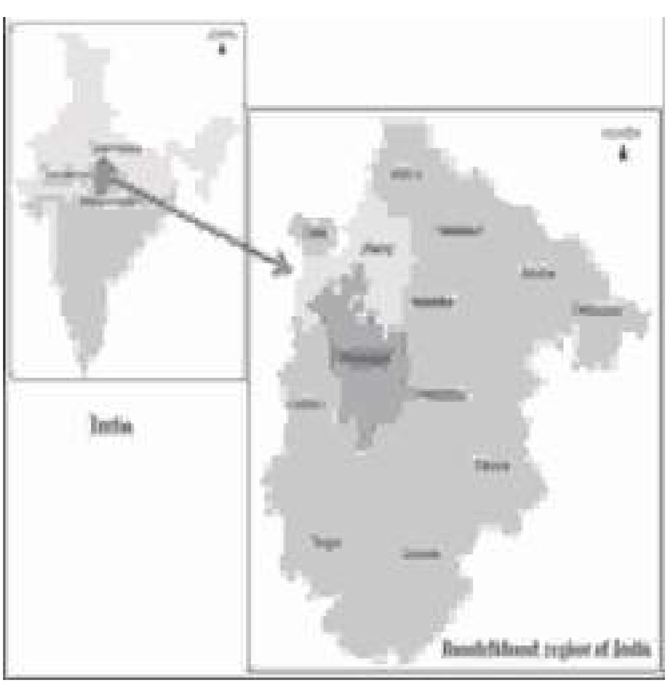

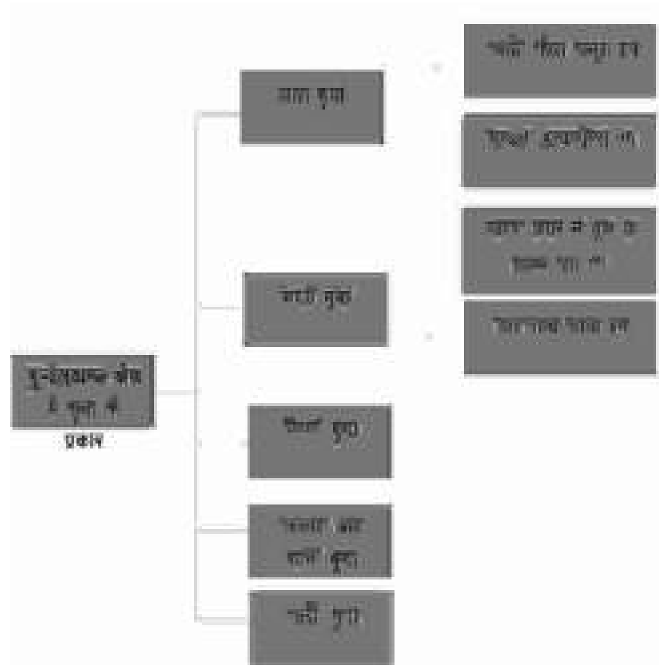

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में मृदा के प्रकार

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में खेती और उससे सम्बंधित समस्याएँ

उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश जिलों सहित बुंदेलखण्ड का कुल खेती का क्षेत्र 45.21 लाख हेक्टेयर से लेकर 54.92 लाख हेक्टेयर है। सूखे और पानी की कमी के कारण कुल खेती वाले क्षेत्र में उतार–चढ़ाव आते रहते है। तदनुसार कुल उत्पादन 33.18 लाख टन से 58.74 लाख टन है। जिसमें 18.80 लाख हेक्टेयर खरीफ की फसल है और 30.20 लाख हेक्टेयर रबी की फसल है। पुरानी प्रचलित धारना के अनुसार बुन्देलखण्ड में खरीफ मौसम में बड़ा क्षेत्र किसानों द्वारा खाली रखा जाता है और खाली जमीन में उगने वाली घास एवं पौधे को जानवरो को खिलाने में प्रयोग किया जाता है और कोई फसल उगाई नहीं जाती है। जिसके कारण मूल रूप से फसलों की उत्पादकता कम हो जाती है। वैसे इसका एक कारण बारिश में कमी भी है और दूसरा कारण पशुपालन को बढ़ावा देना है। रबी फसल में गेहूँ, ग्राम, मटर सरसों और अलसी की फसलें उगाई जाती है। हालाकि वर्तमान में रबी फसलों की उत्पादकता बहुत कम है लेकिन नई उत्पादन प्रौद्योगिकियाँ कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा विकसित की गई है, और की जा रही है।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में कृषि एवं घरेलू उपयोग के लिए पानी की कमी है। जल स्रोत विविध है और अक्सर मौसमी है जिनमें की बाँध, तालाब, झीलें और नदियाँ मुख्य है। मध्य प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में कुँओं और टयूब वैलो के पानी का उपयोग होता है। अधिकांश खेती बारिश के पानी पर ही निर्भर करती है। अधिकाश बुन्देलखण्ड क्षेत्र भू–क्षरण और वनों की कटाई से प्रभावित है, जिसके कारण भूमि की उत्पादकता में कमी आती है। मृदा अपरदन की समस्या पहाड़ी क्षेत्रों से चलने वाली गर्म एवं उच्च हवाओं द्वारा बढ़ जाती है और मृदा की गुणवत्ता को कम कर देती है।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र की दूसरी समस्या यहाँ तापमान का गर्मियों के मौसम में चरम सीमा पर पहुँचना है और सर्दियों में निम्न पर गिरना है। यह बढ़ता–घटता तापमान मैदान पर दबाव डालता है जिसका असर वर्षा वितरण पैटर्न पर पड़ता है जिससे वर्षा में 90 प्रतिशत की अनियमितता आती है।

प्रति वर्ष औसत 800–900 मिमी. की वर्षा होती है, जिसमें से अधिकांश बह जाने के कारण कृषि के लिए उपयोगी नहीं रहती है। जुलाई और अगस्त में अधिकतम वर्षा होती है और नवम्बर और अप्रैल में शुष्क वर्षा होती है। रबी की खेती के लिए सर्दियों की बारिश उपयोगी है परन्तु पूरक सिंचाई अपर्याप्त होने के कारण उपयोग में नहीं आ पाती है।

बुन्देलखण्ड की मृदा की स्थिति

- इस क्षेत्र की मृदा ग्रेनाइट की परत के ऊपर पायी जाती है एवं पथरीली है।
- इस क्षेत्र की मृदा में क्ले की मात्रा की कमी है।
- मृदा में जितनी भी क्ले की मात्रा है वह अपवाह व लीचिंग द्वारा नष्ट हो जाती है।
- इस क्षेत्र की मृदा में कार्बनिक पदार्थ की कमी है जिसके कारण उर्वरकों के उपयोग के बिना फसल लगायी नहीं जा सकती ।
- इस क्षेत्र की मृदा में पानी को सोखने की क्षमता कम है जिसके कारण जलभराव होने की अथवा सूख के कठोर पड़ने की संभावना बढ़ जाती है।
- इस क्षेत्र की मृदा में पोषक तत्वों की कमी है जो इसे खेती के लिए अनुपयुक्त बनाती है।
- इस क्षेत्र में सिंचाई के लिए पानी की कमी है।

बुन्देलखण्ड की मृदा में सुधार

✍ मेड़ बन्दी – एक मेड़ पर सौ पेड़ : "लडकों को खेत और लडकियों को मेड़, मेड़ पर सागबन के पेड़" ।

✍ हरी खाद, वर्मी कम्पोस्टिग, गोबर खाद का उपयोग।

✍ जैव उर्वरकों का उपयोग ।

✍ बाँधों, तालाबों, नदियों की तलहटी पर जमी गाँद से मृदा का उपचार।

✍ पोषक गुणवत्ता को सुधारने के लिए नैनो टैक्नोलोजी, राइजोस्फीयर इन्जीनियरिंग के अलावा सूक्ष्म और अति सूक्ष्म से पोषक प्रबन्धन किया जा सकता है।

यह मृदा पर दुष्प्रभाव डालने वाली वास्ताविकता को सामने लाने का समय है। मिट्टी के प्रदूषण से निपटने के लिए हमें एकजुट होकर दृढ़ संकल्प करना चाहिए ताकि हम इस समस्या का समाधान निकाल सके। किसानों और आम जनता को इसकी सुरक्षा के लिए जागरूकता लाने की जरूरत है। मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार लाने के लिए सरकार ने कई योजनाओं की शुरूआत की थी और पूरे देश में 15 करोड़ मृदा स्वास्थ्य कार्ड किसानों को वितरित करने का लक्ष्य रखा था। जिससे मिट्टी के जैविक गुणों एवं उपजाऊ क्षमता में कमी के बारे में जानकर पुनः मिट्टी में उन गुणों का समावेश कर सकते है। इस वर्ष विश्व मृदा दिवस (5 दिसम्बर) का थीम भी "बी दा सलुसन टू सोयल पलुसन" था जिसका उद्देश्य लोगों के बीच

सोयल पलुसन के लिए जागरूता बढ़ाना था मृदा से प्रदूषण हटाने के गंभीर प्रयास करने की जरूरत है। मृदा स्वस्थ रहेगी तभी हम भी स्वस्थ रहेंगे। अतः आवश्यकता है कि हम सभी धरती माता को निहारे इसकी मृदा गुणवत्ता को सुधारें। हमें सदाबहार कृषि क्रान्ति में मृदा की भूमिका को तराशना पड़ेगा। मृदा के पोषक गुणवता को सुधार में आधुनिक वैज्ञानिक विधियों जैसे नैनो टैक्नोलोजी, राइजो स्फीयर इन्जीनियरिंग के अलावा माइक्रो इरीगेशन विधियों का प्रयोग करना पड़ेगा।

नवोन्मुखी अनुसंधान तकनीक से फसल उत्पादन बढ़ाने की सम्भावनय

स्नेहा अधिकारी, अंजलि जोशी, नरेन्द्र कुमार सिंह एवं सितार सिंह वर्मा

वर्तमान मे बदलते जलवायु परिवेश से फसल उत्पादन को बहुत नुकसान हुआ है, जिसमें सबसे अधिक मात्रा में नुकसान सूखे से हुआ है। फसल नुकसान होने एवं उपयुक्त मात्रा में सिंचाई के लिए जल ना होने से किसानों का पलायन शहरों की तरफ होने लगा है। ऐसे में जरूरत ऐसी फसल किस्मे बनाने का है जो कम जल में भी उत्पादन कर सके। इसके लिए जरूरत है सभी पारम्परिक एवं आधुनिक विधियों को एकीकृत करने की। विभिन्न आधुनिक तकनीकों से बहुत सी तनाव सहिष्णु किस्में बनायी गयी हैं। इन्हीं तकनीकों का उपयोग करके सूखा सहिष्णु किस्में बनाकर सूखा ग्रसित क्षेत्रों में फसल उत्पादन कर किसानों की आर्थिक स्थिति को सुधारा जा सकता है।

पूरी दुनिया में अजैविक तनाव फसल उत्पादन में मुख्य बाधा है। उत्पादकता को सीमित करने के लिए पानी की कमी सबसे महत्वपूर्ण कारक है। मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश के बीच विभाजित क्षेत्र बुंदेलखण्ड में पानी की उपलब्धतता एक महत्वपूर्ण समस्या है। भारतीय मौसम विज्ञान विभाग के अनुसार, लगभग 70,000 वर्ग किमी. क्षेत्र में साल में 800–900 मिमी. बारिश होती है तथा पिछले छह से सात वर्षों में, बारिश की मात्रा लगभग आधी हो गई है। जून से अक्टूबर के मानसून में बारिश की अवधि 52 दिनों से घटकर 24 तक हो गयी है। मौसम के इस बदलाव ने बार–बार और व्यापक रूप से फसल की विफलता को जन्म दिया है, जिसके फलस्वरूप किसान अपनी जमीन छोड़कर काम खोजने की कोशिश में शहरों की तरफ पलायन कर रहें है। जल संसाधनों एवं धन सीमित होने कि वजह से सूखा सहिष्णु प्रजातियों की माँग बढ़ रही है। वास्तव में सूखे के तनाव के प्रति पौधों की प्रतिक्रियाएं बहुत जटिल होती हैं। सूखे की जटिलता सामान्तया अनियमित और अप्रत्याशित वर्षा से सीमांत क्षेत्रों में बारिश की स्थिति, उच्च्य तापमान, उच्च्य स्तर के सौर विकिरण और खराब मिट्टी की विशेषताओं के कारण अलग–अलग तरह की होती है। सूखे के तनाव की प्रकृति की उच्च्य परिवर्तनशीलता और इसकी जटिलता के बारे में अपर्याप्त समझ के कारण सूखे के तहत बेहतर फसल प्रदर्शन के लिए आवश्यक विशिष्ट शारीरिक लक्षणों की पहचान करना मुश्किल है, फलस्वरूप इससे फसल सूखा सहिष्णुता को बढ़ाने के लिए पादप प्रजनन प्रयासों का सीमित कर दिया है। उपज पर इसके सीधे प्रभाव के अलावा, सूखा बेहतर फसल प्रबंधन प्रथाओं जैसे कि उर्वरक प्रबंधन या कीट और रोग प्रबंधन, के संभावित लाभकारी प्रभावों को भी कम कर सकता है। इसलिए सहिष्णु किस्मों के विकास के लिए कुशल सूखा सहिष्णु आनुवंशिक दाताओं की आवश्यकता है। पारंपरिक प्रजनन विधियों का उपयोग करके विभिन्न किस्मों का विकास किया गया है, लेकिन सूखे के प्रति सहिष्णुता के लिए योगदान करने वाले लक्ष्णों के मूल्यांकन में कठिनता के साथ–साथ अधिक समय की भी आवश्यकता होती है। इसलिए जैव–तकनीक तरीकों के साथ आणिवक दृष्टिकोण को पूरक प्रजनन विधियों के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

जैव प्रौद्योगिकी क्षेत्र में वर्तमान के अनुसंधान विकास ने फसल सूखा प्रतिरोध को बढ़ाने के लिए लक्षित सहिष्णुता प्रजनन और नए जीनोमिक्स उपकरणों के उपयोग में रूचि को पुनर्जीवित किया है। आणविक चिन्हक निर्देशित प्रजनन तकनीक ने फसलों के सुधार को एक नयी दिशा दी है।

विशेष रूप से उन लक्षणों कि लिए जहाँ फेनोटाइपिंग मुश्किल है, या आर्थिक रूप से महँगा है के लिये आणविक चिन्हक निर्देशित प्रजनन तकनीक बहुत कारगर सिद्ध हुई है। सूखा सहिष्णु किस्मों के विकास में पहला कदम सूखा सहिष्णु लक्षणों की पहचान करना हैं। कुछ रोगजनकों या कीटों के प्रतिरोध जैसे अपेक्षाकृत आसान मोनाजेनिक लक्षणों की तुलना में, सूखे की प्रतिक्रिया की जटिलता के कारण यह एक आसान काम नहीं है।

अब यह अच्छी तरह से स्वीकार कर लिया गया है, कि सूखे की जटिलता को केवल एक समग्र दृष्टिकोण से ही निपटा जा सकता है। फसल सूखा से बचाव और सहिष्णुता लक्षण के शारीरिक विच्छेदन को एकीकृत करने कि लिए आणविक आनुवांशिकी साधनों जैसे आणविक चिन्हक निर्देशित चयन, ट्रांसजेनिक फसलों तथा जीनोम संपादन का उपयोग, मिट्टी की नमी के बेहतर संरक्षण और उपयोग, और पर्यावरण के साथ फसल तथा प्रजातियों के बेहतर तालमेल के उपयोग से किया जा सकता हैं। आणविक और जैव–प्रौद्योगिकी संबंधी कुछ रणनीतियों की निम्नलिखित प्रमुखों के तहत चर्चा की गई है।

गोविन्द बल्लभ पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पन्तनगर–263145 (उधम सिंह नगर) उत्तराखण्ड

1. आणविक चिन्हक सहायक चयन (एम.ए.एस.):

जब आणविक चिन्हकों का प्रयोग किसी ऐसे पादप के जीनोमिक क्षेत्र के चयन के लिए किया जाता है जो गुणात्मक या मात्रात्मक चरित्र की अभिव्यक्ति में शामिल होता है। विशेष रूप से आणविक चिन्हक सहायक चयन जटिल लक्षणों के लिए फसल में सुधार की गति को बढ़ावा दे सकता है। आणविक चिन्हक सहायक चयन (एम.ए.एस.) तीन चरण की प्रक्रिया है, अर्थात सूखा सहिष्णुता लक्षणों के साथ जुड़े क्यूटीएल की पहचान करना, उनका सत्यापन करना और उपयुक्त आनुवंशिक बैक ग्राउंड में शामिल करके प्रजातियों का विकास करना या संकरों के विकास के लिए माता–पिता की लाइनें प्राप्त करना। आणविक चिन्हक सहायक चयन का उपयोग करके सूखे प्रतिरोध से संबंधित मात्रात्मक विशेषता जीनोमिक क्षेत्र (क्यूटीएल) की पहचान करना आशाजनक दृष्टिकोण में से एक है। आणविक चिन्हकों की मदद से सूखे सहिष्णुता क्यूटीएल की पहचान करने का प्रयास किया जा सकता है। आणविक चिन्हकों के प्रयोग से अधिक जल तथा लवण सहिष्णु धान की अधिक उत्पादन देने वाली प्रजातियाँ विकसित की गयीं है। सूखा सहिष्णुता के लिए क्यूटीएल कई प्रमुख और महत्वपूर्ण फसल प्रजातियों जैसे चावल, मक्का, गेंहूं, जौ, ज्वार, बाजरा, सोयाबीन और और चना के लिए खोज किए गए हैं (तालिकाः 1)। एक बार केन्डीडेड जीन या सूखे सहिष्णुता से जुड़े चिन्हकों की पहचान होने के बाद सूखा सहिष्णुता प्रजनन में इनका उपयोग किया जा सकता है।

तालिका 1: प्रमुख फसलों में सूखा सहिष्णुता के लिए क्यूटीएल

क्र.सं.	फसल	लक्षण	क्यूटीएल संख्या
1	धान	अनाज की उपज	2
		सपेक्ष विकास दर और पानी का उपयोग	7
		कोलियोप्टायल लंबाई और सूखा प्रतिरोध सूचकांक	15
		बेसल जड़ की मोटाई और 100 दानों का वजन	2
		जड़ लक्षण	18
		सूखा से बचाव	17
		ओस्मोटिक समायोजन	1
2	गेहूँ	अनाज की उपज और उपज घटक	20
		मूल विशेषता, सूखा सहिष्णुता सूचकांक और उपज	56
		एबीए	1
		एंथेसिस सिल्किंग अन्तराल	46
3	मक्का	एग्रोनोमिक और फिजियोलोजिकल लक्षण	104
		मॉर्फो–फिजियोलोजिकल लक्षण	110
		अनाज की पैदावार और वृद्धि	42
		सूखे के तहत अनाज की उपज और उपज घटक	1
4	जौ	सूखा–संबंधी मॉर्फो– फिजियोलोजिकल लक्षण	68
		उपज और अन्य एग्रोनोमिक लक्षण	74
		रिलेटिव वाटर कंटेंट	6
		ओस्मोटिक समायोजन संबंधित लक्षण	22
5	ज्वार	स्टे ग्रीन	5
		स्टे ग्रीन एवं परिपक्वता	9
6	बाजरा	अनाज की उपज संबंधित लक्षण	20
7	सोयाबीन	उपज	1
		वाटर यूज एफिशिएंसी	7
8	राजमा	उपज और उपज घटक लक्षण	49
		वाटर यूज एफिशिएंसी	3

आणविक चिन्हक निर्देशित बैकक्रासिंग (एम.ए.बी.सी.)

जब शुष्क सहिष्णुता लक्षण के लिए खोजे गए क्यूटीएल उच्च प्रारूप भिन्नता में योगदान करते हैं, तो उन्हें प्रमुख क्यूटीएल माना जाता है। वांछित जर्मप्लाज्म में सत्यापन के बाद इन क्यूटीएल को कम सूखा–सहिष्णु किस्म या प्रजनन विभेदों में दाता आनुवंशिक प्रारूप से अवांछनीय जीन के हस्तांतरण के बिना, यानी लिंकेज ड्रैग के बिना अंर्तगमन किया जा सकता है। इस प्रक्रिया को आमतौर पर आणविक चिन्हक निर्देशित बैक क्रासिंग के रूप में जाना जाता है। प्रमुख फसलों में विभिन्न शोधार्थियों द्वारा प्रमुख क्यूटीएल की पहचान की गई और सूखा सहिश्णु किस्मों को विकसित करने के लिए प्रजनन विभेदों में शामिल किया गया है (तालिका 2, तालिका 3)।

तालिका 2: एम.ए.बी.सी के द्वारा विभिन्न फसलों में सूखे के लिए प्रमुख क्यूटीएल का हस्तांतरण

क्र.सं	फसल	लक्षण	हस्तांतरित जीन/क्यूटीएल की संख्या
1	धान	सूखे के तहत उपज और अनाज की गुणवत्ता	विभिन्न क्यूटीएल
2	कपास	सूखा सहिष्णुता संबंधी लक्षण	7 क्यूटीएल
3	राजमा	सूखा सहिष्णुता से संबंधित लक्षण	विभिन्न क्यूटीएल

तलिका 3: आणविक प्रजनन से विकसित अजैविक कारकों के प्रति सहिष्णु किस्में

क्र.सं	फसल	आणविक दृष्टिकोण लागू + चयन रणनीति	किस्में	तनाव प्रतिरोधकता
1	धान	बेहतर रूट विकास के लिए कई मात्रात्मक विशेषता लोकी (क्यूटीएल) के लिए चयन के साथ मार्कर– सहायक बैक क्रासिंग	बिरसा विकास धान	सूखा
		आणविक चिन्हक निर्देशित चयन + भागीदारी पादप प्रजनन, जड़ + तना + उपज	अशोक 228 (बीवीडी 109)	सूखा
		आणविक चिन्हक निर्देशित चयन + भागीदारी पादप प्रजनन, जड़ + तना + उपज	अशोक 220 (बीवीडी 110)	सूखा
		आणविक चिन्हक निर्देशित चयन + भागीदारी पादप प्रजनन, जड़ + तना + उपज	पी वाय 84	सूखा
		आणविक चिन्हक निर्देशित चयन	हन्यौ 2 और 3 (संकर)	सूखा
		आणविक चिन्हक निर्देशित बैक क्रासिंग	स्वर्णा सब–1	जल भराव
		आणविक चिन्हक निर्देशित बैक क्रासिंग	सालटोल	क्षार प्रतिरोधकता

1.2. आणविक चिन्हक आधारित आर्वतक चयन (एम.ए.आर.एस.)

जब कई क्यूटीएल या जीन्स एक जटिल लक्षण को नियंत्रित करते हैं तब आणविक चिन्हक सहायक चक्रिय चयन (एमएआरएस), जिसमें प्रत्येक चयन चक्र में चयनित पादप को संकरण/अंतरसमागम में शामिल किया जाता है, को प्रयोग किया जा सकता है। एमएबीसी की एक और कमी यह है कि बेहतर एलील की आवृत्ति अपर्याप्त होती है इस कमी को भी एम.ए.आर.एस. से दूर किया जा सकता है क्योंकि इसमें मार्कर सहायक चयन का प्रयोग हर चयन चक्र में किया जाता है तथा बेहतर एलील की आवृत्ति को बढ़ाया जा सकता है। मधुर मक्का, सूरजमुखी और सोयाबीन में एम.ए.आर.एस. का सफल उपयोग किया गया है।

1.3. जीनोम वाइड चयन (जी. डब्लू.एस.)

उत्कृष्ट प्रदर्शन के साथ बेहतर जर्मप्लाज्म विभेदों को विकसित करने के लिए जीनोम वाइड चयन (जीडब्लूएस) या जीनोमिक चयन (जीएस) एक नियोजित वातावरण में एक समग्र और महत्वपूर्ण तरीका है। जीडब्लूएस में ट्रेंनिग पॉपुलेशन की फेनोटाइपिंग महत्वपूर्ण है और जीन की प्रभावशीलता और प्रासंगिकता को बढ़ाने के लिए अतिरिक्त लाइनों को समय के साथ एकीकृत किया जाना चाहिए। जीडब्लूएस विधि का उपयोग करके सूखे सहिष्णुता के विभिन्न घटकों को व्यवस्थित रूप से पता लगाया जा सकता है तथा वांछित आनुवंशिक गुणों को एकत्रित कर पौधों की सूखे के प्रति सहिष्णुता को बढ़ाकर कम जल उपलब्धता वाले क्षेत्रों में अधिक उत्पादन लिया जा सकता है।

2. सूखा प्रतिरोध के लिए आनुवंशिक इंजीनियरिंग

पादप कार्यात्मक जीनोमिक्स जीन के कार्यों का अध्ययन करने के लिए एक नए और तेजी से विकसित वैज्ञानिक शिक्षा की एक शाखा के रूप में उभरा है। पिछले कई दशकों में, कई फसलों के लिए जीनोमिक संसाधन विकसित करने में काफी प्रगति हुई है। इस प्रकार, मेटाबोलामिक्स, ट्रांसक्रिपटॉमिक्स और प्रोटिओमिक्स के अलावा, सूखा तनाव प्रतिक्रिया को चिन्हित करने के लिए एक प्रमुख उपकरण प्रदान करता है।

जैव प्रौद्योगिकी के प्रयोग से किसी भी जीव के जीन का किसी भी दूसरे पौधों, पशुओं और शूक्ष्म जीवाणुओं में हस्तांतरित कर सुधार की संभावनाओं को अत्यधिक आकर्षित बना दिया है। इसके अलावा जीनोमिक्स के विभिन्न शाखाओं के प्रयोग से विभिन्न गुणों के लिए जिम्मेदार आनुवंशिक कारकों के पहचान की है। साथ ही इन आनुवंशिक कारकों का मूल्यांकन कर इनके गुणों का भी निर्धारण किया गया है। आनुवंशिक अभियांत्रिकी द्वारा मुल्यांकित जीन का प्रयोग कई सारी फसलों की प्रजातियों के सुधार में किया गया है। आज आनुवंशिक अभियांत्रिकी द्वारा विकसित प्रजातियों की खेती पूरी दुनिया में करीब 189.8 मिलियन हैक्टेयर में होती है।

अजैविक तनवा के प्रति पौधे में कई रक्षा युक्ति सक्रिय होती हैं जो प्रतिकूल परिस्थितियों में सहिष्णुता बढ़ाने के लिए कार्य करते हैं। सूखा तनाव से संबंधित मेटाबोलिक पाथवे के जीन, नियामक जीन तथा संरचनात्मक जीन का उपयोग आनुवंशिक अभियांत्रिकी के द्वारा करके कई फसलों जैसे चावल, गेहूं, मक्का, सरसों और सोयाबीन इत्यादि फसलों में सूखे के प्रति रोधक क्षमता को बढ़ाने में सफलता पायी गई है। आनुवंशिक अभियांत्रिकी द्वारा विकसित अजैविक कारकों के प्रति सहनशील प्रजातियों को तलिका 4 में दर्शाया गया है।

तालिका 4: आनुवंशिक अभियांत्रिकी द्वारा विकसित अजैविक कारकों के प्रति सहनशील प्रजातियाँ

क्र.सं	फसल	प्रजाति	व्यापरिक नाम
1	मक्का	मोन 87460	ड्राउट गार्ड
		मोन 87460 X मोन 88017	उपलब्ध नहीं
		मोन 87460 X मोन 89034 ग एनके 603	उपलब्ध नहीं
		मोन 87460 X मोन 800603–6	उपलब्ध नहीं
		मोन 87460 X एनके 603	उपलब्ध नहीं
		मोन 89034 X मोन 87460	उपलब्ध नहीं
2	सोयाबीन	इंड 00410–5	वेरडेका एच.बी.4
3	गन्ना	एन. क्स. आई. – 1टी	उपलब्ध नहीं
		एन. क्स. आई. – 4टी	उपलब्ध नहीं
		एन. क्स. आई. – 6टी	उपलब्ध नहीं

सामान्यतया अजैविक कारकों के प्रतिरोधक किस्मों के विकास में विभिन्न पारंपरिक तरीकों का सदियों से प्रयोग होता रहा है तथा कृषि के विकास तथा उत्पादकता बढ़ाने में इन विधियों का अहम् योगदान रहा है। बदलते परिवेश में अजैविक कारकों तथा विशिष्ट रूप से सूखे के प्रति सहिष्णु प्रजातियों के विकास में जटिलता के कारण, आनुवंशिक चिन्हक निर्देशित प्रजनन से फसल सुधार संभावनायें बनी हैं, विशेष रूप से उन लक्षणों के लिए जहाँ फेनोटाइपिंग मुश्किल है, या आर्थिक रूप से महंगा है। यह स्पष्ट है कि पादप प्रजनन में उपयोग के लिए सबसे उपयुक्त क्यूटीएल और कैंडिडेट जीन की पहचान के लिए बड़े कोर संग्रह/मैपिंग पॉपुलेशन की जॉच के लिए सटीक फेनोटाइपिंग अवाश्यक है। पादप जीनोमिक्स की वर्तमान स्थिति ने सूखा सहिष्णुता में शामिल विभिन्न आणिवक युक्ति और इन तनाव सहिष्णुता में शामिल विभिन्न जीनों की पहचान करने में सक्षम बनाया है। जीनोमिक्स में उत्पन्न जानकारी को व्यावहारिक पादप प्रजनन में एकीकृत कर फसल में सुधार किया जा सकता है (चित्र 1)।

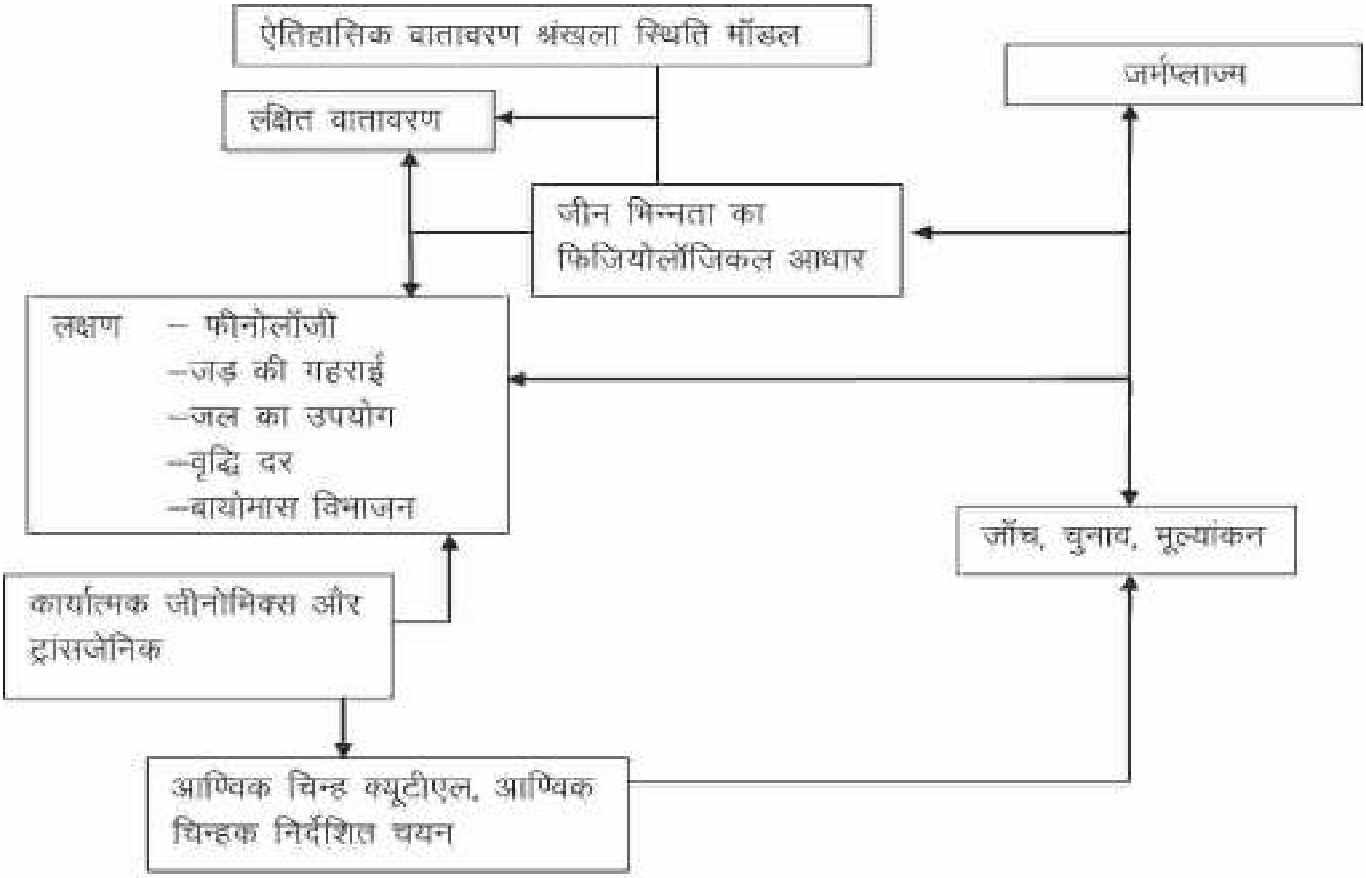

चित्र 1 : सूखा प्रतिरोध की आनुवंशिक वृद्धि के लिए एकीकृत रणनीति

आणिवक प्रजनन एवं आनुवंशिक अभियांत्रिकी तकनीक से कई सारी अजैविक कारकों के प्रति सहिष्णु प्रजातियाँ विकसित की गयी है जिसका फायदा किसान अधिक उत्पादन के रूप में ले रहा है। सूखा सहिष्णुता के जटिल लक्षणों को जानने तथा इसके आणिवक आधार को समझने और हमारी बदलती जलवायु के लिए अगली पीढ़ी की फसलों को विकसित करने के लिए एवं भविष्य में विभिन्न फसलों की बेहतर सूखा प्रतिरोधी किस्मों को विकसित करने के लिए पादपकार्यिकी, जीनोमिक्स, जैवप्रौद्योगिकी और पारम्परिक प्रजनन युक्ति को एकीकृत करना आवश्यक है। उत्तम प्रकार के प्रतिरोधी किस्मों के विकास से किसानों की आर्थिक स्थिति को सुधार कर किसानों के पलायन को रोका जा सकता है।

बुन्देलखण्ड में सरसों की वैज्ञानिक तरीके से खेती

सुनील कुमार जाटव[1], अनिल कुमार राय[2] एवं आशुतोष शर्मा[3]

सरसों का तिलहनी फसलों में एक प्रमुख स्थान हैं। सरसों की खेती सीमित सिंचाई की दशा में भी अधिक लाभदायक फसल हैं। बुन्देलखण्ड क्षेत्रों में यह फसल सिंचित एवं असिंचित दोनो अवस्थाओं में सफलापूर्वक की जा सकती हैं। सरसों के बीज में तेल की मात्रा 30–48 प्रतिशत तक पायी जाती हैं। इस की खली में लगभग 4.9 प्रतिशत नत्रजन, 2.5 प्रतिशत फॉस्फोरस एवं 1.5 प्रतिशत पोटाश पाया जाता हैं। जिसका उपयोग बुन्देलखण्ड क्षेत्रों में पशुओं को खिलाने के रूप में किया जाता हैं।

भारत की प्रमुख तिलहनी फसलों में सरसों एवं राई का महत्वपूर्ण स्थान हैं। यह देश में प्रमुख रूप से राजस्थान, उत्तर प्रदेश, पंजाब, असम, बिहार, मध्यप्रदेश पश्चिमी बंगाल और उड़ीसा में उगाई जाती हैं। राजस्थान का सरसों एवं राई उत्पादन में भारत में प्रथम स्थान हैं। बुन्देलखण्ड क्षेत्रों में यह फसल सिंचित एवं बारानी दोनों अवस्थाओं में सफलतापूर्वक ले सकने के कारण एक वरदान सिद्ध होती हैं। सरसों के हरे पौधे से लेकर सूखे तने एवं बीज आदि का उपयोग किया जाता हैं। सरसों के बीज में तेल की मात्रा 30–48 प्रतिशत तक पायी जाती हैं। इसके हरे पौधों का प्रयोग जानवरों के हरे चारे के रूप में लिया जा सकता हैं। साथ ही पशु आहार के रूप में बीज, तेल एवं खली को काम में ले सकते हैं। क्योंकि इनका प्रभाव शीतल होता हैं, जिससे ये कई रोगों की रोकथाम में सहायक सिद्ध होते हैं। इसकी खली में लगभग 4.9 प्रतिशत नत्रजन, 2.5 प्रतिशत फॉस्फोरस एवं 1.5 प्रतिशत पोटाश होता हैं। अतः इसका उपयोग खाद की तरह किया जा सकता हैं, किन्तु हमारे देश में यह केवल पशुओं को खिलाई जाती हैं। इसके सूखे तनों को ईंधन के रूप में भी उपयोग किया जाता हैं।

उन्नतशील किस्में व विवरण :

टी 59 (वरूणा) : इसकी उपज असिंचित क्षेत्रों में 10–15 क्विं. एवं सिंचित अवस्था में 15–18 कुंतल/हे. होती हैं, इसमें तेल की मात्रा 36 प्रतिशत होती हैं।

आर.एच 30 : सिंचित व असिंचित दोनों ही स्थितियों में गेहूँ, चना, जौ के साथ खेती के लिए उपयुक्त हैं, इसमें 45–50 दिन में फूल आने लगते हैं और फसल 130–135 दिन में पक जाती हैं एवं इसके दाने मोटे होते हैं।

बायो 902 (पूसा जयकिसान) : इसकी फलियां पकने पर दाने झड़ते नहीं एवं इसका दाना कालापन लिए भूरे रंग का होता हैं। इसकी उपज 18–20 कुंतल/हे. पकाव अवधि 130–140 दिन एवं तेल की मात्रा 38–40 प्रतिशत होती हैं। इसके तेल में इरूसिंक एसिड व लिनोलिक एसिड की मात्रा कम होने को कारण तेल में असंतृप्त वसीय अम्ल कम होते हैं, इसलिए इसका तेल खाने के लिए उपयुक्त होता हैं। इसके 1000 दानों का वनज 5.8 ग्राम होता हैं। फलियों में 12–15 दाने होते हैं।

पूसा बोल्ड : मध्यम कद वाली इस किस्म की शाखायें फलियों से लदी व फलियाँ मोटी होती हैं तथा इसके एक हजार दानों का वनज 6 ग्राम होता हैं। यह 130–140 दिन में पककर 20–25 क्विं/हे. उपज देती हैं। इसमें तेल की मात्रा 37–38 प्रतिशत तक पायी जाती हैं।

वसुन्धरा (आर.एच. 9304) : 130–135 दिन में पकने वाली इस किस्म की पैदावार 25–27 कुंतल/हे. तक होती हैं। यह किस्म आड़ी गिरने तथा फली छटकने से प्रतिरोधी हैं तथा सफेद रोली से मध्यम प्रतिरोधी हैं।

माया (आर.के. 9902) : यह किस्म 130–135 दिन में पककर तैयार हो जाती हैं। सामान्य समय एवं सिंचित बुवाई के लिए उपयुक्त इस किस्म का पौधा सामान्य शाखा युक्त, सघन फली पकने पर भूरी व बीज काला एवं मोटा होता हैं। तेल की मात्रा 39–40 प्रतिशत तथा पैदावार 25–29 कुंतल/हे. तक होती हैं। यह किस्म पत्ती धब्बा से मध्यम प्रतिरोधी हैं।

जगन्नाथ (वी.एस.एल.) : यह किस्म 125–130 दिन में पककर तैयार हो जाती हैं। इस किस्म का पौधा झाड़ीनुमा होता हैं। तना हरा, गांठ (नोड) पर हल्का बैंगनी रंग का होता हैं। बीज सलेटी से काले रंग का मध्यम मोटा तथा 1000 दानों का भार लगभग 4.8–5.0 ग्राम होता हैं। तेल की मात्रा 39–40 प्रतिशत तथा औसत पैदावार 20–25 कुंतल/हे. होती हैं।

[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, बड़गांव, बालाघाट
[2] एवं [3] रानी लक्ष्मीबाई केन्द्रीय कृषि विष्वविद्यालय झाँसी (उ0प्र0)

अरावली (आर.एन. 393) : 135–138 दिन में पकने वाली इस किस्म की ऊंचाई मध्यम (155–165 सेमी.), तना चिकना, गोल, ठोस व हरा, पत्तियां हल्की हरी एवं किनारे कटे–फटे, फूल पीले, फली 4–5 सेमी. लम्बी, फली की नोक छोटी एवं सूई जैसे बीज गहरे भूरे एवं मध्यम आकार के होते हैं। 1000 दानों का भार 4–5 ग्राम एवं तेल की मात्रा 42 प्रतिशत होती हैं। 55–60 दिन में फूल आने वाली इस किस्म की औसत पैदावार 22–25 कुंतल/हे. तक होती हैं।

लक्ष्मी (आर.एच. 8812) : यह किस्म 140–145 दिन में पककर तैयार हो जाती हैं। इस किस्म का पौधा, अधिक ऊँचाई व अधिक शाखाओं वाला तथा रोयेंयुक्त मजबूत होता है। पत्तियाँ छोटी एवं पतली लेकिन फली आने पर भार के कारण आड़ी पड़ने की संभावना होती हैं। तेल की मात्रा 40 प्रतिशत होती हैं तथा औसत पैदावार 22–25 कुंतल/हे. होती हैं। यह किस्म पत्ती धब्बा रोग से मध्यम प्रतिरोधी हैं।

स्वर्णा ज्योति (आर.एच. 9802) : यह किस्म 135–140 दिन में पककर तैयार हो जाती हैं। इसकी पत्तियां तीखी, नोकयुक्त, तना गहरा मोमयुक्त तेल की मात्रा 39–42 प्रतिशत होती हैं। यह किस्म 15 नवम्बर तक बोई जाने पर भी अच्छी पैदावार देती हैं। इसकी औसत पैदावार 13–15 कुंतल/हे. होती हैं। यह आड़ी गिरने एवं फली छिटकने से प्रतिरोधी, पाले के लिए मध्यम सहनशील एवं सफेद रोली से मध्यम प्रतिरोधी हैं।

आशीर्वाद (आर.के. 01-03) : यह किस्म देरी से बुवाई के लिए (25 अक्टूबर से 15 नवम्बर तक) उपयुक्त पायी गई हैं। इसका पौधा 130–140 सेमी. ऊँचा, इसकी पत्तियां तीखी, नोकयुक्त, तना हरा तथा 35–40 दिन में फूल आते हैं। फली लगभग 3.5–4.0 सेमी. लम्बी, 10–12 बीज प्रति फली 1000 दानों का भार लगभग 3.5–4.5 ग्राम होता हैं। तेल की मात्रा 39–42 प्रतिशत होती हैं। यह किस्म आड़ी गिरने एवं फली छिटकने से प्रतिरोधी पाले से मध्यम प्रतिरोधी 120–130 दिन में पककर 13–15 कुंतल/हे. उपज देती हैं।

डी.एम.ए.-1 : यह किस्म सरसों की हाईब्रिड हैं। यह हाईब्रिड भी समय से बुवाई एवं सिंचित क्षेत्र के लिए उपयोगी हैं। अधिक ऊँचाई वाली (140–145 सेमी.) यह किस्म 130–140 दिन में पककर तैयार हो जाती हैं। इसमें तेल की मात्रा 40–41 प्रतिशत तक पायी जाती हैं। इसके बीज मध्यम आकार के होते हैं तथा 1000 दानों का भार 4–5 ग्राम तक होता हैं। यह हाईब्रिड बीमारियों एवं कीटों से सहनशील होती हैं।

एन.आर.सी.एच.बी. 506 : यह हाईब्रिड भी समय से बुवाई एवं सिंचित क्षेत्र के लिए उपयोगी हैं। अधिक ऊंचाई वाली (150–160 सेमी.) यह किस्म 130–150 दिन में पककर तैयार हो जाती हैं। इसके बीज मध्यम आकार व गहरे रंग के होते हैं तथा 1000 दानों का भार 5–6 ग्राम तक होता हैं। यह हाईब्रिड बीमारियों एवं कीटों से सहनशील होती हैं।

जलवायु की आवश्यकता : भारत में सरसों की फसल शरद ऋतु में ली जाती हैं। इसके लिए तापक्रम 18–25 सेन्टीग्रेड तक कम आर्द्रता बहुत अच्छी रहती हैं। सरसों की फसल के लिए फूल आते समय वर्षा, अधिक आर्द्रता एवं वायुमण्डल में बादल छाये रहना अच्छा नहीं रहता हैं। अगर इस प्रकार का मौसम होता हैं, तो फसल पर माहू या चैंपा का अधिक प्रकोप हो जाता हैं।

खेत की तैयारी : सरसों की फसल लेने के लिए बुन्देलखण्ड क्षेत्रों की दोमट व हल्की दोमट मृदा सर्वोतम रहती हैं, जिनमें उचित जल निकास की व्यवस्था हो। इसको हल्की ऊसर भूमि में भी बोया जा सकता हैं। सरसों की बीज छोटा होने के कारण, खेत की तैयारी के समय ढेले व मृदा जल की कमी नहीं होनी चाहिए वरना अंकुरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। सरसों की फसल सिंचित एवं बारानी दोनों प्रकार से की जा सकती हैं। बारानी खेती के लिए भूमि को खरीफ में पड़त छोड़कर उसको समय–समय पर 4–6 जुताई करना चाहिए, जिससे भूमि में नमी पर्याप्त मात्रा में संरक्षित हो सकें। जबकि सिंचित क्षेत्रों के लिए भूमि की तैयारी खरीफ की फसल के कटने के बाद प्रारम्भ कर सकते हैं। मृदा में उचित नमी बनी रहे, इसके लिए आवश्यकतानुसार पाटा लगाते रहना चाहिए। यदि खेत में दीमक एवं अन्य कीटों का प्रकोप अधिक हो, तो इनके नियंत्रण हेतु अंतिम जुताई के समय क्यूनोलफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण 25 किलोग्राम एजोटोबेक्टर एवं पी.एस.वी. कल्चर को 50 किलोग्राम सड़ी हुई गोबर की खाद या वर्मीकम्पोस्ट में मिलाकर अंतिम जुताई से पूर्व खेत में डालना चाहिए।

बीज की मात्रा, बीज उपचार एवं बुवाई : बुवाई के लिए शुष्क क्षेत्र में 4–5 किलो तथा सिंचित क्षेत्र में 3–4 किलो बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त रहता हैं।

बीज को 2 ग्राम मैंन्कोजेब या 3 ग्राम थाइरम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करके ही बोयें। सफेद रोली से बचने के लिए बीज को मेटेलेक्जिल एप्रोन 35 एसडी 6 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करके बोयें तथा बुवाई के 30–45 दिन में डाइथेन एम–45 (0.2 प्रतिशत) या जेट्रोन (0.25 प्रतिशत) का छिड़काव करें।

सरसों में एजोटोबेक्टर एवं पी.एस.बी. कल्चर से बीजोपचार करें। इससे नत्रजन एवं फॉस्फोरस उर्वरकों की 20 प्रतिशत की बचत होती हैं।

पौधों के बीच की दूरी 10–15 सेमी. रखते हुए कतारों में 5 सेमी. गहरा बीज बोयें। कतार से कतार की दूरी 30–45 सेमी. रखे। असिंचित क्षेत्रों में बीज की गहराई नमी के अनुसार रखें।

बारानी क्षेत्र में सरसों की बुवाई 15 सितम्बर से 15 अक्टूबर तक सिंचित क्षेत्रों में इसकी बुवाई 10–25 अक्टूबर तक कर देनी चाहिए। सिंचित क्षेत्र में बुवाई पलेवा देकर ही करें। देर से बुवाई करने पर उपज में भारी कमी हो जाती हैं। साथ ही चेपा तथा सफेद रोली का प्रकोप भी अधिक होता हैं। बुवाई के समय वातावरण का तापक्रम के अधिक एवं न्यूनतम का औसत (25 सें.) आने पर करनी चाहिए।

मिश्रित खेती : बारानी चने के साथ मिश्रित खेती करने से अधिक लाभ मिलता हैं। इससे फसल को पाला नहीं मारता हैं तथा दवा का आसानी से छिड़काव भी कर सकते हैं। सोयाबीन के बाद अन्तरशस्य के रूप में चना 6 लाईन+2 लाईन सरसों के बोने पर एवं 2 सिंचाई क्रमशः शाखाएं निकलते समय व फली में दाना बनते समय देने पर अधिक आमदनी प्राप्त होती हैं। बारानी क्षेत्रों में सरसों की दो लाईनों के बाद 30–30 सेमी. की दूरी पर चने की दो कतारें बोने से अधिक लाभ होता हैं।

खाद व उर्वरक प्रबंधन : सरसों की फसल प्रारम्भिक अवस्था में अधिक तेजी से वृद्धि करती हैं। अतः इस फसल के द्वारा शीघ्रता से पोषक तत्व ग्रहण किये जाते हैं। इसलिए सिंचित फसल के लिए 8–10 टन सड़ी गोबर की खाद प्रति हैक्टेयर की दर से बुवाई के 3–4 सप्ताह पूर्व खेत में डालकर खेत की तैयारी करें एवं बारानी क्षेत्र में वर्षा से पूर्व 4–5 टन सड़ी खाद प्रति हैक्टेयर खेत में डाल देवें। एक–दो वर्षा के बाद खेत में समान रूप से फैलाकर जुताई करें। सिंचित क्षेत्रों में 80 किलोग्राम नत्रजन, 30–40 किलोग्राम, फॉस्फोरस एवं 375 किलोग्राम जिप्सम या 60 किलोग्राम गन्धक चूर्ण प्रति हैक्टेयर की दर से डालें। नत्रजन की आधी व फॉस्फोरस की पूरी मात्रा बुवाई के समय देवें। शेश आधी मात्रा (नत्रजन) प्रथम सिंचाई के समय देवें। बारानी क्षेत्रों में सिंचित क्षेत्रों से आधी मात्रा से उर्वरक बुवाई के समय देवें।

सिंचाई : सरसों की फसल में सही समय पर सिंचाई देने पर पैदावार में बढ़ोत्तरी होती हैं। यदि वर्षा पर्याप्त होती हैं, तो फसल को सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती हैं, तो फसल को सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती हैं, परन्तु यदि वर्षा समय पर न हो, तो 2 सिंचाई आवश्यक हैं। प्रथम सिंचाई बुवाई के 30–40 दिन बाद (फूल आने से पहले) एवं द्वितीय सिंचाई 70–80 दिन की अवस्था में करें। यदि जल की कमी हो तो एक सिंचाई 40–50 दिन की फसल में करें।

निराई–गुड़ाई एवं खरपतवार नियंत्रण : सरसों की फसल रबी में बुवाई की जाती हैं। इसमें मुख्यतया बथुआ, खरथुआ, प्याजी, हिरण खुरी, दूबघास एवं ओरोबंकी खरपतवारों की अधिक समस्या रहती हैं। अतः सरसों की फसल में प्रारम्भिक अवस्था में खरपतवार नियंत्रण परम आवश्यक हैं। यदि फसल में पौध संख्या अधिक हो तो बुवाई के 20–25 दिन बाद निराई–गुड़ाई के साथ–साथ पौधे निकाल कर पौधे से पौधे की दूरी 10–15 सेन्टीमीटर रखें। प्रथम सिंचाई से पूर्व निराई–गुड़ाई करना लाभप्रद रहता हैं। इससे पौधों की बढ़वार अच्छी होती हैं।

रसायनों द्वारा खरपतवार नियंत्रण : रसायनों द्वारा खरपतवार नियंत्रण तीन प्रकार से किया जा सकता है :

1. **बुवाई के पूर्व प्रयुक्त करने वाले रसायन :** सरसों फसल में बुवाई से पूर्व ट्राईफ्लूरेलीन 48 ई.सी. / 0.75 किलो सक्रिय तत्व/हैक्टेयर (व्यवसायिक दर 1.5 लीटर/हे.) को 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव से खरपतवारों की प्रभावी रोकथाम के साथ अधिक उपज प्राप्त की जा सकती हैं।
2. **बुवाई के बाद एवं अंकुरण होने से पहले प्रयुक्त करने वाले रसायन :** सरसों फसल में अंकुरण पूर्व पेन्डीमिथेलीन 30 ई. सी. / 1.0 किलो सक्रिय तत्व/हैक्टेयर (व्यवसायिक दर 3. 3 लीटर/हे.) या ऑक्साडायरजिल 6 ई.सी. / 0.09 किलो सक्रिय तत्व/हैक्टर (व्यवसायिक दर 1.5 लीटर/हे.) को 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव से खरपतवारों की प्रभावी रोकथाम के साथ अधिक उपज प्राप्त होती हैं। जिससे सरसों की फसल में खरपतवार नियंत्रण किया जा सकता हैं।

पौध संरक्षण :

पेन्टेड बग व आरा मक्खी : अंकुरण के 7–10 दिन में ये कीट अधिक हानि पहुंचाते हैं। इनकी रोकथाम हेतु क्यूनॉलफॉस 1.5 प्रतिशत या मैलाथियान 5 प्रतिशत या मिथाइल पैराथियॉन 2 प्रतिशत या कार्बेरिल 5 प्रतिशत चूर्ण 20–25 किलो प्रति हैक्टेयर की दर से प्रातः या सायंकाल भुरकें।

मोयला : मोयला की रोकथाम हेतु मिथाइल पैराथियॉन 2 प्रतिशत या मैलाथियॉन 5 प्रतिशत या कार्बेरिल 5 प्रतिशत चूर्ण 20–25 किलो प्रति हैक्टेयर भुरकें अथवा पानी की सुविधा वाले स्थानों में मैलाथियॉन 50 ई.सी. सवा लीटर या डाइमिथोएट 30 ई.सी. 875

मि.ली. या फार्मेथियॉन 25 ई.सी. 1 लीटर या कार्बेरिल 50 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण ढाई किलो अथवा क्लोरापायरीफॉस 20 ई.सी. 600 मि.ली. या एसीफेट 75 एस.पी. का 700 ग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करें, आवश्यकता पड़ने पर 15 दिन बाद पुनः दोहरायें।

लीफ माइनर : इसकी रोकथाम हेतु क्यूनॉलफॉस 25 ई.सी. 600–700 मि.ली. या मिथाइल पैराथियॉन 50 ई.सी. 500 मि.ली. पानी में घोलकर छिड़कें। जहाँ यह छिड़काव संभव नहीं हो, वहाँ मैलाथियॉन 5 प्रतिशत या कार्बेरिल 5 प्रतिशत मिथाइल पैराथियॉन 2 प्रतिशत चूर्ण 20–25 किलो / हे. भुरकें। आवश्यकता पड़ने पर 21 दिन बाद दूसरा छिड़काव / भुरकाव करें।

आग्या : पराश्रयी पौधों का बीज बनने से पहले ही उखाड़ कर नष्ट करें तथा रोगरोधक जातियों का प्रयोग करें।

छाछ्या : रोग दिखाई देते ही प्रति हैक्टेयर 20 किलो गंधक चूर्ण भुरकें या ढाई किलो घुलनशील गंधक का 0.3 प्रतिशत घोल या 750 मि.ली. केराथिन का 0.1 प्रतिशत पानी में घोल बनाकर छिड़कें।

कीट नियंत्रण हेतु पौध संरक्षण : फसल को कीट रहित रखने के लिए खड़ी फसल में निम्न प्रकार पौध संरक्षण उपाय (छिड़काव या भुरकाव) अपनायें।

प्रथम भुरकाव/छिड़काव (अंकुरण के 7 से 10 दिन में) : मिथाइल पैराथियॉन 2 प्रतिशत या मैलाथियॉन 5 प्रतिशत या कार्बेरिल 5 प्रतिशत चूर्ण 20–25 किलो प्रति हैक्टेयर की दर से प्रातः या सायं भुरकें अथवा मैलाथियॉन 50 ई.सी. सवा लीटर या डाइमिथोएट 30 ई.सी. 875 मि.ली. या क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. 600 मि.ली. प्रति हैक्टर की दर से पानी में मिलाकर छिड़कें।

द्वितीय भुरकाव/छिड़काव : दिसम्बर के अंतिम सप्ताह में या मोयला दिखाई देते ही उपरोक्तानुसार ही दवाओं का छिड़काव करें।

तृतीय छिड़काव : द्वितीय छिड़काव के 15–20 दिन बाद / फूल आने के पश्चात मिथाइल पैराथियॉन 2 प्रतिशत या मैलाथियॉन 5 प्रतिशत या कार्बोरिल 5 प्रतिशत चूर्ण 25 किलो प्रति हैक्टेयर भुरकें या मैलाथियॉन 50 ई.सी. सवा लीटर या क्लोरापायरीफॉस 20 ई.सी. 600 मि.ली. या कार्बेरिल 50 प्रतिशत घुलनशील ढाई किलो प्रति हैक्टेयर की दर से प्रकोप दिखाई देते ही छिड़काव करें, आवश्यकता पड़ने पर 15 दिन बाद छिड़काव पुनः दोहरायें।

झुलसा, तुलासिता व सफेद रोली : इन रोगों के लक्षण दिखाई देते ही डेढ़ किलो मैंकोजेब प्रति हैक्टेयर का 0.2 प्रतिशत पानी में घोल बनाकर छिड़कें। आवश्यकतानुसार यह छिड़काव 20 दिन के अंतर पर दोहरायें। बुवाई के पहले बीज को एप्रोन 35 एस.डी. 6 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करके बोवें।

टिप्पणी :

1. यदि तीसरे छिड़काव के बाद भी एफिड्स का प्रकोप रहे, तो इसके लिए बताई गई कोई भी एक दवा का छिड़काव या भुरकाव फिर दोहरायें।
2. एफिड्स व छाछ्या के अच्छे नियंत्रण हेतु सरसों की हर दस कतारों के बाद चने की दो कतारें बोयें, इससे छिड़काव में सुविधा होगी।
3. फसल को पाले से बचाने हेतु फसल पर गंधक के तेजाब के 0.1 प्रतिशत घोल का छिड़काव फूल आने से पूर्व करें। इसे संभावित पाला पड़ने की अवधि में दोहराते रहना चाहिए।

फसल की कटाई : सरसों की फसल 120–125 दिन में पककर तैयार हो जाती हैं। फसल की कटाई उचित समय पर करना अत्यन्त आवश्यक हैं। क्योंकि देरी से कटाई करने पर फलियाँ चटकने लगती हैं एवं उपज में 5–10 प्रतिशत की कमी आ जाती हैं। जैसे ही पौधे की पत्तियों एवं फलियों का रंग पीला पड़ने लगे, कटाई कर लेनी चाहिए, कटाई के समय इस बात का विशेश ध्यान रखें कि सत्यानाशी खरपतवार का बीज, फसल के साथ न मिलने पायें, नहीं तो इस फसल के दुशित तेल से मनुष्य में ''ड्रोपसी'' नामक बीमारी हो जायेंगी। सरसों में केवल टहनियों को काटकर बंडलों में बांधकर खलियान में पहुंचा देवें एवं कुछ दिन तक फसल को सुखाने को पश्चात थ्रेसर से निकाल लेवें। फिर बीज को फर्श पर सुखाने के बाद, उचित नमी की अवस्था में बोरियों में भरकर भण्डार गृह में पहुंचा देना चाहिए।

बुन्देलखण्ड क्षेत्रों में सरसों की खेती को सफलतापूर्वक किया जा रहा हैं। यह इन क्षेत्रों में लाभदायक फसल साबित हुई हैं। यदि किसान इस फसल के साथ–साथ मधुमक्खी पालन भी कर सकते हैं। जिससे फसल में परागण में वृद्धि होगी। जिससे उपज में वृद्धि होती हैं। जिससे किसान अतिरिक्त मुनाफा भी कमा सकते हैं।

ग्रीष्मकालीन मूँग की उन्नत कृषि कार्यमाला

प्रतीक सनोडिया

बुन्देलखण्ड में खाद्यान्न पदार्थो में प्रोटीन की मात्रा की पूर्ति मूँग की खेती को अपनाकर किया जा सकता है। मूँग में लगभग 24% प्रोटीन पाया जाता है जो पूर्णतः पाच्य होता हैं। इसके अलावा मूँग की फसल अवधि लगभग 60 से 70 दिन में पककर तैयार हो जाती है। जिसे उगाकर अल्प समय में किसानों द्वारा अतिरिक्त मुनाफा ग्रीष्मकाल में लिया जा सकता है। अतएव उन्नत किस्मों के उपयोग एवं बेहतर कृषि तकनीकों को अपनाकर गर्मी के मौसम में मूँग की खेती करना बुन्देलखण्ड के किसानों के लिये काफी लाभदायक है। मूँग की फसल मृदा की भौतिक रासायनिक एवं जैविक दशा को सुधारने में काफी कारगर हैं क्योंकि इसकी जड़ों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले जीवाणु मृदा में नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ाते है यह अगले सीजन में उगाने वाली फसल के लिये भी लाभदायक हैं। मूँग के फसल अवशेष को चारे के रूप में भी उपयोग किया जा सकता है एवं यदि इसे मृदा में जुताई के माध्यम से मिला दिया जाये तो कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में वृद्धि होती है यह मृदा के उत्तम स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है।

बुन्देलखण्ड में मुख्य रूप से पाई जाने वाली मृदा काली, लाल एवं हल्की पीली है। मूँग की खेती बुन्देलखण्ड में किसानों की आय में वृद्धि का एक उपयुक्त साधन हैं क्योंकि बुन्देलखण्ड में मूँग की खेती के लिए मृदा एवं जलवायु अनुकूल है बुन्देलखण्ड में दलहनी फसलों का क्षेत्रफल अधिक हैं परन्तु इसका उत्पादन अपेक्षाकृत कम है क्योंकि किसानों को आधुनिक कृषि पद्धति की जानकारी का आभाव है । मूँग की खेती ग्रीष्मकाल में उचित किस्में, पोषक प्रंबधन, जल प्रबंधन खरपतवार प्रबंधन एवं कीट व्याधियों के प्रबंधन को वैज्ञानिकों से सलाह लेकर अधिक मुनाफा कमाया जा सकता है। साथ ही मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशा को सुधारा जा सकता है मृदा में नाइट्रोजन स्थिरीकरण में वृद्धि की जा सकती है अतः इस प्रकार बुन्देलखण्ड में आधुनिक कृषि पद्धतियों के द्वारा ग्रीष्मकालीन मूँग की खेती किसानों के लिये एक वरदान साबित हो सकता है।

भूमि का चुनाव एवं तैयारी

बुन्देलखण्ड में मूँग की खेती सभी प्रकार की भूमि में सफलतापूर्वक की जाती है। मध्यम दोमट, मटियार भूमि समुचित जल निकास वाली, जिसका पी.एच. मान 7–8 हो इसके लिये उत्तम है। भूमि में प्रचुर मात्रा में स्फुर का होना लाभप्रद होता है। उत्तरी भारत में अच्छी जल निकासी वाली दोमट मटियार मिट्टी और दक्षिणी भारत के लिए लाल मिट्टी उपयुक्त है। रबी फसल कटाई उपरांत खेत में एक बार मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई करके 2 से 3 बार कल्टीवेटर या देशी हल से जुताई करनी चाहिए और पाटा चला कर खेत को बराबर बना लेना चाहिए। खेत से खरपतवार व पुरानी फसल के ठूँठों को बाहर निकाल देना चाहिए। आखिरी जुताई के समय खेत में गोबर या कंपोस्ट खाद 50 क्विंटल प्रति हेक्टयर की दर से मिट्टी में मिला देनी चाहिए। दीमक से बचाव के लिए क्लोरोपायरीफास 15 फीसदी चूर्ण 20 किलोग्राम प्रति हेक्टयर अथवा एल्ड्रिन 5 प्रतिशत चूर्ण 8 किलोग्राम प्रति एकड़ के हिसाब से अंतिम बखरनी के पूर्व भुरकावें और बखर से मिट्टी में मिलावें।

बीज की मात्रा एवं बीजोपचारः

गरमी के मौसम में मूँग के लिए बीज दर 20 किलोग्राम प्रति हेक्टयर रखनी चाहिए। 3 ग्राम कार्बेन्डाजिम /3 ग्राम थायरम फफूंदनाशक दवा से प्रति किलो बीज के हिसाब से उपचारित करने से बीज एंव भूमि जन्य बीमारियों से फसल की सुरक्षा होती हैं। इसके बाद बीज को रायजोबियम कल्चर से उपचारित करें। 5 ग्राम रायजोबियम कल्चर प्रति किलो बीज के हिसाब से उपचारित करें और छाया में सुखाकर शीघ्र ही बुवाई करना चाहियें। इसके उपचार से रायजोबियम की गाँठें ज्यादा बनती हैं, जिससे नत्रजन स्थिरीकरण में बढ़ोत्तरी होती है तथा जमीन की उर्वरा शाक्ति बनी रहती है।

बोनी का समय एवं विधिः

ग्रीष्म में फरवरी के दूसरे पखवाडे से मार्च के दूसरे पखवांडे तक बुवाई करना चाहिये। बुवाई सीडड्रिल से कतारों के बीच 20–25 सेमी. व पौध से पौध के बीच 10 सेमी. और 4–5 सेमी. गहराई पर करें। ताकि ज्यादा से ज्यादा पौध संख्या प्रति एकड़ प्राप्त हो सके। जायद मूँग की बोआई जहाँ सिंचाई की सुविधा हो वहाँ फरवरी में ही कर देनी चाहिए। उत्तर प्रदेश, पंजाब हरियाणा,

रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी (उ0प्र) 284003

दिल्ली, बिहार व पश्चिम बगांल में मूँग की खेती गरमी के मौसम में की जाती है।

खाद एवं उर्वरक की मात्रा एवं देने की विधिः

मूँग एक दाल वाली फसल है, इसलिए मृदा में नाइट्रोजन की पूर्ति स्वतः हो जाती है, फिर भी 20 किलोग्राम नाइट्रोजन, 50 किलोग्राम फास्फोरस व 20 किलोग्राम पोटाश की मात्रा प्रति हेक्टयर की दर से बोआई के समय देना फायदेमंद होगा। गंधक की कमी वाले रकबों में गंधकयुक्त उर्वरक 20 किलोग्राम प्रति हेक्टोयर के हिसाब से देना चाहिए। सभी चारों तरह के उर्वरकों की पूरी मात्रा बोआई से पहले या बोआई के समय ही देना चाहिए। यदि संभव हो तो हर तीसरे साल में 1 बार 10 से 15 क्विंटल अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद आखिरी जुताई के समय प्रति हेक्टेयर की दर से खेत में डालनी चाहिए। बुन्देलखण्ड मे जायद मौसम के लिए उपयुक्त प्रजातियाँ नीचे दी गई हैं:

बुन्देलखण्ड में जायद मौसम के लिए उपयुक्त प्रजातियाँ

जातियों का नाम	पकने की अवधि (दिन)	उपज किग्रा/ हेक्टेयर	विशेषतायें
पूसा – 9531	65–70	650–800	पौधा सीधा बढ़ने वाला छोटा कद का, दाना मध्यम, चमकीला हरा, पीला मोजेक वायरस प्रतिरोधी, जायद के लिये उपयुक्त ।
पूसा – 105	65–70	400–480	दाना गहरा हरा, मध्यम आकार का, पीला मोजेक वायरस प्रतिरोधी, पावडरी मिल्डयू एवं मायक्रोफोमीना ब्लाईट रोगो के लिये सहनशील, जायद मौसम के लिये उपयुक्त।

सिंचाई एवं जल निकासः

जायद मूँग फसल में खरीफ की तुलना में पानी की ज्यादा आवश्यकता होती है। गरमी के मौसम में 10 से 15 दिनों के अंतर पर 4 से 6 सिंचाई करनी चाहिए। ज्यादा गरमी होने पर सिंचाई का अंतर 8 से 10 दिनों का रखना चाहिए। लेकिन फूल आने की दशा में सिंचाई करने से उपज में वृद्धि होती है।

निंदाई व बुवाईः

प्रथम निंदाई बुवाई के 20–25 दिन के भीतर व दूसरी 40–50 दिन में करना चाहिये। 2–3 बार कोल्पा चलाकर खेत को नींदा रहित रखा जा सकता है घास व चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों को रासानिक विधि द्वारा खत्म करने के लिए फ्लूक्लोरिलिन 45 ईसी की 2 लीटर मात्रा 800 से 1000 लीटर पानी में घोल कर बोआई से पहले खेत मे छिड़काव करे। बोआई के बाद बीज जमने से पहले पेंडिमेथिलीन 30 ईसी की 3.3 लीटर मात्रा 800 से 1000 लीटर पानी में घोल कर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

फसल चक्र एवं अंतरवर्तीय फसलः

निम्न फसल चक्र अपनाने से उत्पादन के साथ–साथ भूमि की उर्वरा शाक्ति बनी रहती है – धान आधारित क्षेत्रों के लिये : धान–गेंहू–मूँग अंतरवर्तीय फसल में ज्वार+मूँग – 4:2 या 6:3, मक्का + मूँग – 4:2 या 6:3

मूँग के कीट एवं उनका नियंत्रणः

पौध संरक्षण मूँग के खास कीड़े काला लाही माहूं : नए पौधे से फली निकलने की दशा में इस कीट के शिशु व वयस्क पौधों की पत्तियों पर पाए जाते हैं। ये बसंतकालीन फसल की मुलायम टहनियों, फूलों व कच्ची फलियों से रस चूसते हैं।

नियंत्रणः माहूं का प्रकोप होने पर पीले चिपचिपे ट्रैप का इस्तेमाल करें, ताकि माहूं ट्रैप पर चिपक कर मर जांए। परभक्षी काक्सीनेलिड्स या सिरफिड या क्राइसोपरला कार्निया का संरक्षण कर के 50000–100000 अंडे या सूंडियां प्रति हेक्टयर की दर से छिड़कें। नीम का अर्क 5 फीसदी या 1.25 लीटर नीम का तेल 100 लीटर पानी में मिला कर छिड़कें। बीटी का 1 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए. इसके बावजूद रोकथाम न हो तो मेटासिस्टाक्स 25 ईसी या डाइमेथोएट 30 ईसी या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एसएल सा थायोमेक्जाम 25 ईसी 1 मिलीमीटर प्रति लीटर पानी की दर से छिड़कें।

सफेद मक्खीः इस कीट के द्वारा फसल को कई तरह से नुकसान पहुँचाया जाता है यह पौधों से रस चूसती है और पत्तियों पर स्रावित मधु छोड़ती है। द्रव पर काला चूर्णी फफूंदी (शूटी मोल्ड) के पनपने व फैलने से प्रकाश संश्लेषण की क्रिया में रूकावट होती है और पीला चितकबरा रोग (पीला मोजैक) के विषाणु तेजी से फैलते हैं। रोगी फसल पूरी तरह से बरबाद हो जाती है।

नियंत्रणः सफेद मक्खी से बचाव के लिए बोआई से 24 घंटे पहले डायमेथोएट 30 ईसी कीटनाशी रसायन से 8.0 मिलीलीटर प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार करना चाहिए। शुद्ध फसल के बजाय मिश्रित खेती करना ज्यादा लाभप्रद है। खासकर ज्यादा

लंबाई वाली फसलों जैसे गन्ना, ज्वारा व सूरजमुखी वगैरह में से किसी को मूँग के साथ 6:1 या 6:3 अनुपात से लगाने से रोशनी पंसद करने वाले सफेद मक्खी जैसे कीड़ों की संख्या पर बहुत हद तक नियंत्रण हो पाता है।

थ्रिप्सः मूँग की फसल पर फूल की दशा में गरमी में मुलायम कलियों पर थ्रिप्स कीटों का हमला होता है। ये फूलों को बहुत नुकसान पहुंचाते है। मूँग की फलियों पर भी थ्रिप्स कीटों का प्रकोप होता है और उन में दाने विकसित नहीं हो पाते हैं। सभी रस चूसक कीटों में थ्रिप्स सबसे ज्यादा हानिकारक है।

नियंत्रणः थ्रिप्स की रोकथाम करने के लिए फूल खिलने से पहले ही डायमेथोएट 30 ईसी या मैलाथियॉन 50 ईसी का 1 लीटर प्रति हेक्टेयर या मेटासिस्टाक्स 25 ईसी का 700 मिलीलीटर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

मूँग के रोग एवं उनकी रोकथामः

पीली चितेरी रोग (येलो मोजेक): मूँग का पीला चितेरी रोग विषाणु द्वारा पैदा होने वाला सबसे खतरनाक रोग है। यह विषाणु बीज व छूने से फैसला है। पीली चितेरी रोग सफेद मक्खी (बेमिसिया टैबेकाई) जो एक रस चूसक कीट है के द्वारा फैलता है। रोग से प्रभावित पौधे देर से पनपते हैं। इन पौधों में फूल और फलियां स्वस्थ पौधों के मुकाबले ही कम लगती है।

रोकथामः बोआई के लिए रोग व उन्नत प्रजातियों एसएमएल 668, नरेंद्र मूँग 1, पीडीएम 84–139 (सम्राट), पीडीएम 84–143 (बसंती), पीडीएम 54 (मोती), मेहा, पूसा विशाल, एचयूएम 16 आदि का चयन करें। फसल चक्र एक महत्वपूर्ण उपाय है एवं सफेद मक्खी की रोकथाम के लिए मेटासिस्टाक्स या मैलाथियान या डामेथोएट या मोनोक्रोटोफास (0.04 :) का छिड़काव करनी चाहए।

झुर्रीदार पत्ती रोग (लीफ क्रिंकल): यह रोग 'उर्द बीन लीफ क्रिक्ल विषाणु' द्वारा होता है। रोग का फैलाव पौधे के रस (सैप) व बीज से होता है। यह खेत में लाही (माहूं) व अन्य कीटों द्वारा भी फैलता है। इस विषाणु के संक्रमण से फूल कलिकाओं में पराग कण बांझ हो जाते हैं, जिससे रोगी पौधों में फलियां कम लगती है। फसल पकने के समय तक भी रोगी पौधे ही रहते है।

रोकथामः बोआई के लिए रोग रोधी व उन्नत प्रजातियों का चयन करना चाहिए। सफेद मक्खी की रोकथाम के लिए फसल पर मेटासिस्टाक्स या मैलाथियान या डामेथोएट या मोनोक्रोटोफास (0.04 प्रतिशत) का छिड़काव करना चाहिए।

सर्कोस्पोरा पत्र बुंदकी रोगः यह 'सर्कोस्पोरा' नामक प्रजातियों द्वारा होता है। इस रोग के लक्षण पत्तियों पर गहरे भूरे रंग के धब्बों के रूप में प्रकट होते है। धब्बों का बाहरी भाग भूरे रंग का होता है। ये धब्बे पौधों की शाखाओं व फलियों पर भी बन जाते है अनुकूल वातावरण में ये धब्बे बड़े आकार के हो जाते है फूल आने व फलियां बनने के समय रोगी पत्तियां गिर जाती है। रोग पैदा करने वाले कवक बीज व रोग ग्रसित पौधों के मलवे पर भूमि में जीवित रहते है।

रोकथामः बोआई से पहले बीजों को कवकनाशी कार्बेन्डाजिम 2 ग्राम या थीरम 2–5 ग्राम से प्रति किलोग्राम की दर से उपचारित करना चाहिए। फसल पर रोग के लक्षण दिखाई पड़ते ही कार्बेडाजीम (0.1 प्रतिशत) या मैंकोजेब (0.2 प्रतिशत) कवकनाशी के घोल का छिड़काव करना चाहिए।

फसल कटाई–गहाई जब फलियाँ काली पड़कर पकने लगे तब तुड़ाई करना चाहिये। पूरी फसल में फलियों को 2 से 3 बार में तोड़ लिया जाता है इन फलियों को सुखाकर बैलों के दावन से या लकड़ी द्वारा पीटकर गहाई करें फसल की कटाई मूँग की किस्म पर निर्भर करती है। एक ही समय में पकने वाली प्रजाति में जब फसल 80 फीसदी तक पक जाती है, तो उसे जड़ से उखाड़ लेते है या काट लेते है । उसके बाद धूप में सुखाकर ट्रैक्टर या लकड़ी के डंडे से गहाई कर लेते है मूँग की फलियां गुच्छों में लगती है। आमतौर पर खरीफ की फसल में कुछ फलियां अंत तक बनती रहती हैं। ऐसी दशा में पकी फलियों को तोड़ना सही होता है। करीब 80 फीसदी फलियां पकने पर फसल की कटाई कर सकते है। पकी फसल पर बारिश होने की स्थिति में फलियों के अंदर दाने अंकुरित होने लगते हैं, लिहाजा मौसम को ध्यान में रखते हुए फसल की कटाई व फलियों की तोड़ाई करना सही होता है। सही समय पर फसल की कटाई करने के बाद गहाई कर के भंडारण करें।

उपजः ग्रीष्मकालीन मूँग की औसत उपज 6 से 8 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है। नए तरीके से खेती करने पर इसकी पैठावार 10 क्विंटल तक ली जा सकती है।

बुन्देलखण्ड में मूँग की खेती उपरोक्त कृषि माला को अपना कर किसान भाई अपनी आय में वृद्धि करने के साथ–साथ अपनी कृषि भूमि का स्वास्थ्य उत्तम बना सकते है।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में अरबी से आय

हरपाल सिंह, अमित तोमर, प्रदीप कुमार बरेलिया एवं प्रभात तिवारी

'कोलोकेसिआ एस्कुलेन्टा'' जिसे हम अरबी के नाम से भी जानते है यह एरेसी कुल से सम्बन्धित है। अरबी एक अति लोकप्रिय जड़ एवं रेशे वाली सब्जी है जिसे सम्पूर्ण भारत वर्ष में सफलतापूर्वक उगाया जा रहा है। हमारे देश के विभिन्न जिलों के साथ–साथ बुन्देलखण्ड क्षेत्र में भी अरबी उगाकर ''अरबी से आय'' लेने की अपार संभावनाएं है इसमें भरपूर मात्रा में पोषक तत्व विटामिन–ए, बी., सी. एवं ई. वहीं खनिज पदार्थ ताँबा, लौह, जिंक, मैग्नीशियम, कैल्शियम एवं बीटाकैरोटीन। यह विभिन्न प्रकार के शारीरिक विकारों रक्त शर्करा, पाचन शक्ति, पेट साफ करने, वजन कम करने एवं कैंसर जैसी घातक बीमारी को नियंत्रण करने में सहायक है। रेशे वाली सब्जी होने के नाते यह रक्त शर्करा को कम कर मानव शरीर में इन्सुलिन के बढ़ते प्रभाव को कम करती है। अरबी पोषक तत्वों की दृष्टि से परिपूर्ण है जो कि मानव शरीर के सम्पूर्ण विकास में अपना विशेष स्थान रखती है।

ये सर्वविदित है कि बुन्देलखण्ड क्षेत्र की मृदा पोषक तत्वों से भरी है उसी आधार पर हम कह सकते हैं कि बुन्देलखण्ड के सभी क्षेत्र–झाँसी, ललितपुर, हमीरपुर, टीकमगढ़, दतिया एवं ग्वालियर में अरबी उत्पादन की अपार सम्भावनाएं हैं। प्रत्येक श्रेणी के किसान इस छोटी जड़ वाली सब्जी को उगाकर अधिक से अधिक लाभ कमा सकते हैं। यदि अरबी की फसल उपयुक्त समय पर उगा ली जाये तो बाजार में अच्छी कीमत पर बेची जा सकती है इसको उगाने के लिए हमारे किसानों तक सही तकनीकी ज्ञान व उगाने की वैज्ञानिक क्रियाविधि हमारे इस लेख द्वारा पहुंचायी जा रही है जिसे अपनाकर किसान अपनी सब्जी उत्पादन क्षमता बढ़ाकर अधिक से अधिक आय प्राप्त कर सकते है समस्त सब्जियों एवं विशेषतः ''अरबी से आय'' लेने के लिए समस्त क्षेत्रीय किसानों के सहायतार्थ हमारे रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय एवं बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय द्वारा क्षेत्र में सब्जी उत्पादन बढ़ाने के लिए अपने–अपने स्तर पर शोध कार्य किये जा रहे है जो निकट भविष्य में बुन्देलखण्ड के किसानों के लिए मार्गदर्शक का माध्यम बनेगें। किसानों के मार्गदर्शन हेतु यहां पर अरबी की खेती की चर्चा करना परम आवश्यक प्रतीत होता है जो निम्नवत प्रस्तुत है।

अरबी एक भूमिगत, शाकीय एवं अर्धगर्म जलवायु की सब्जी वाली फसल है। सब्जी की दृष्टि से यह बहुत अहम फसल है जिसे उचित मात्रा में पानी की जरूरत होती है। भारत के उत्तरी भाग में इसे नकद सब्जी फसल के रुप में उगाया जा रहा है। इसे 'तारो' एवं घुइयां आदि कई नामों से भी पुकारा जाता है। इसकी खेती प्रमुखतः भारत के विभिन्न राज्यों उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, हरियाणा एवं पंजाब में बड़ी आसानी से की जा रही है।

गर्मी के मौसम में मध्य फरवरी से अप्रैल के अन्तिम सप्ताह में या बरसात के माह में जुलाई के प्रथम सप्ताह से अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में इसे रोपकर उगाया जा सकता है। जड़ या कंदमूल ही मुख्यतः खाने वाला भाग होता है परन्तु देश के विभिन्न भागों में

*कृषि विज्ञान संस्थान, बुन्देलखण्ड विष्वविद्यालय, झाँसी (उ.प्र.)
**रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विष्वविद्यालय, झाँसी (उ.प्र.)

इसके पत्तों से साग एवं अरबी की पकौड़ी भी बनायी जाती है। पोषक तत्वों को दृष्टि से यह बहुत महत्वपूर्ण है इसमें प्रमुखतः लोह, जिंक, कैल्शियम, मैग्नीशियम एवं बीटाकैरोटीन व इसके कंदों में र्स्टाच भी प्रमुख रुप से पाया जाता है। विटामिन्स ए, बी, सी और ई भी प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। स्टार्च के प्रमुख मात्रा में होने के कारण इससे एल्कोहल बनाया जाता है इसके साथ ही विभिन्न प्रकार के सौन्दर्य प्रसाधन सामग्री भी अरबी से तैयार की जाती है। धार्मिक दृष्टि से भी इसका उपयोग महत्वपूर्ण है। इसके कंद को उबालकर, पकाकर एवं उपवास के दौरान फल आहार के रूप में उपयोग करते हैं।

जलवायु– भारत के अधिकतर गर्म भागों में ही इसकी खेती की जाती है। हमारे देश का उत्तरी भाग इसकी खेती करने के लिए उत्तम माना गया है। बरसात के दिनों में भी इसे आसानी से उगाया जाता है।

अरबी के खेत की तैयारी–सबसे पहले मिट्टी पलटने वाले हल से खेत की गहरी जुताई करनी चाहिए उसके बाद 2 से 4 बार मिट्टी को भुरभुरी करने के लिए कल्टीवेटर से जुताई करनी चाहिए जिससे मिट्टी भुरभुरी हो सके एवं कंद भी आसानी से विकसित हो सके। अरबी की खेती के लिए उचित जल निकास की व्यवस्था करनी चाहिए।

अरबी की बुबाई– अरबी की बुबाई इस बात पर निर्भर करती है कि उसे किस उद्देश्य के लिए उगाया जा रहा है तो पौधे से पौधे की दूरी 45 सेमी. एवं पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 सेमी. रखनी चाहिए और यदि कंद के लिए उगाया जा रहा है तो पौधे से पौधे की दूरी 60 सेमी. एवं पंक्ति से पंक्ति की दूरी 60 सेमी. रखकर गहराई पर बीज वाली गांठों को बोना चाहिए।

उन्नतशील प्रजातियां– श्री रोमी व श्री पल्लवी इसकी सर्वाधिक उपज देने वाली प्रजातियां है। इसके पौधों की ऊँचाई 1 से 1.5 सेमी., इन प्रजातियों की फसल अवधि 4 से 6 माह व 15 से 18 टन प्रति हैक्टेयर उपज प्राप्त की जा सकती है। कुछ सामान्य किस्में सतमुखी, नरेन्द्र अरबी व इंदिरा अरबी प्रमुख है।

खाद एवं उर्वरकों की मात्रा– एक अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए खाद व उर्वरकों की निश्चित मात्रा फसल उत्पादन को प्रभावित करती है। सड़ी हुई गोबर की खाद 30 से 35 टन व 110 किग्रा. नाइट्रोजन, 70 किग्रा. फास्फोरस, 90 किग्रा. पोटाश प्रति हैक्टेयर अच्छे उत्पादन के लिए आवश्यक होती है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा बुबाई के समय व शेष मात्रा 50 से 70 दिन बाद खड़ी फसल में टाप ड्रेसिंग से देना लाभकारी होता है।

सिंचाई– इसकी समुचित खेती के लिए जल की उचित व्यवस्था होनी चाहिए, गर्मी के दिनों में 4 से 8 दिन के अन्तराल पर व बरसात में कम पानी की आवश्यकता होती है।

निराई–गुड़ाई– अच्छी उपज लेने के लिये समय पर निराई–गुड़ाई करनी चाहिए। खरपतवार होने पर उचित समय पर हाथों से निराई–गुड़ाई करते रहना चाहिए एवं समय–समय पर अरबी की फसल में मिट्टी चढ़ाते रहना लाभदायक होता है।

रोग एवं नियन्त्रण– पछेती झुलसा रोग– इस रोग के प्रमुख लक्षण अण्डाकार, गोल व अनियमित बैंगनी रंग के धब्बे पत्तियों के किनारों पर पाये जाते हैं। अरबी के इस रोग का प्रमुख कारक फाइटोफ्थोरा कोलोकेशी नामक फफूंद है।

रोग प्रबंधन –

1. प्रतिरोधी किस्मों का चुनाव।
2. वर्षा आच्छादित क्षेत्रों में अग्रिम बुबाई न करें।
3. रोग रहित रोपण सामग्री का इस्तेमाल करना चाहिए।
4. रोग प्रभावित पौधों या अवशेषों को नष्ट कर देना चाहिए।
5. बीज कंदों को उपचारित करके ही बोयें।
6. उचित फसल चक्र अपनायें।

अरबी में कीट एवं नियंत्रण– एफिड, लीफ कटर व शकरकंद, हाक मॉथ प्रमुख कीट इसकी फसल को हानि पहुंचाते हैं। 0.2 प्रतिशत एमिडाक्लोरोप्रिड या डाइक्लोरोवास का छिड़काव कीट नियंत्रण में सहायक होता है।

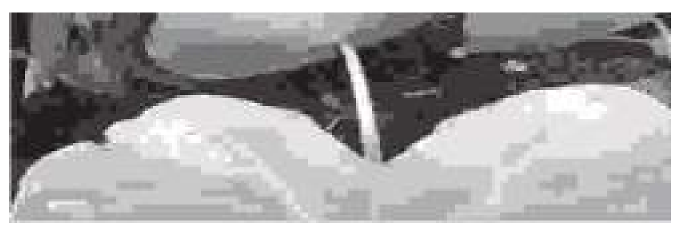

कीट से प्रभावित अरबी की पत्तियाँ

उपज– अरबी की फसल बुबाई के 3 माह बाद खुदाई के लिए तैयार हो जाती है जब पत्तियां पीली पड़कर सूखकर गिरने लगे तब खुदाई करनी चाहिए। अरबी का उत्पादन जलवायु, मृदा एवं किस्म पर निर्भर करता है। 10 से 18 टन प्रति हैक्टेयर उपज प्राप्त की जा सकती है।

भण्डारण– अरबी को भण्डारित करने के लिए साफ, स्वस्थ कंदों का ही प्रयोग करना चाहिए। क्षतिग्रस्त कंद भण्डारण हेतु प्रयोग नहीं करना चाहिए। नमी रहित स्थान ही चुनना चाहिए तथा साथ ही साथ कंदों को पलटते रहना चाहिए।

यह सर्वविदित है कि अरवी पोषक तत्वों से भरपूर है। रेशे वाली सब्जी होने के साथ साथ यह विभिन्न शारीरिक विकारों जैसे कि

रक्त शर्करा, पाचन शक्ति, पेट साफ, एवं कैंसर जैसी बीमारी को नियंत्रण करने में मददगार सिद्ध हुयी है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र की मिट्टी एवं जलवायु की दृष्टि से भी अरवी को उपर्युक्त माना गया है। अरवी की खेती से बुन्देलखण्ड क्षेत्र के किसानों की आर्थिक व सामाजिक स्थिति को सुधारा जा सकता है तथा किसान अधिक से अधिक आय कमा सकते हैं।

अरबी की स्वस्थ फसल

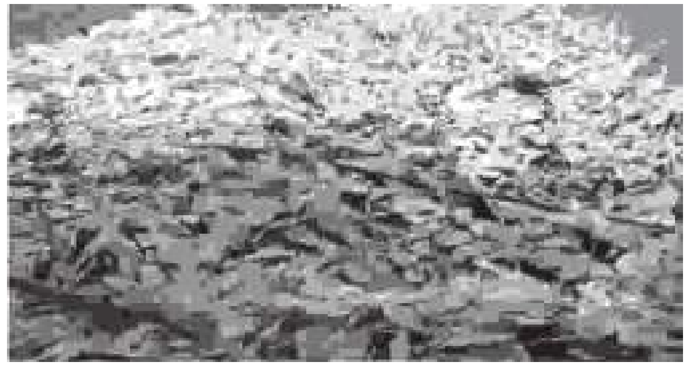

अच्छे अंकुरण एवं नमी संरक्षण के लिए पलवार का प्रयोग

बुन्देलखण्ड क्षेत्र के लिये उन्नत सब्जी पौध तैयार करना

डी.के. उपाध्याय, अमित तोमर, प्रभात तिवारी एवं ए.के. पाण्डेय

अच्छी फसल उगाने के लिए पौध का स्वस्थ होना नितान्त आवश्यक है। पौध उगाने के बारे में पूरी जानकारी रखना आवश्यक है जिससे पौधशाला में डाले गये प्रत्येक बीज से स्वस्थ पौध विकसित किया जा सके। सब्जियों में मुख्य रूप से ऐसी सब्जियाँ, जिनके बीज अत्यन्त छोटे होते हैं जैसे– टमाटर, बैगन, मिर्च, शिमला मिर्च, फूलगोभी, पत्तागोभी, गाँठ गोभी, ब्रोकली, ब्रूसल्स स्प्राउट, सलाद पत्ता, प्याज, चाइनीज मस्टर्ड इत्यादि। उनका पौध तैयार करना आवश्यक होता है।

अब प्रश्न उठता है कि इनकी पौध तैयार करने की आवश्यकता क्यों है? सब्जियों की पौध तैयार करने के अनेकों कारण है जो निम्नलिखित है – इन सब्जियों के बीज काफी छोटे होते है जिसका विस्तृत क्षेत्र में बुवाई करके देखभाल करना सम्भव नहीं है। पौधशाला मे पौध तैयार करते समय श्रम व धन की बचत होती है जिससे उत्पादन लागत में कमी की जा सकती है।

उपयुक्त वातावरण प्रदान कर विपरीत परिस्थितियों में भी बीजों का जमाव (अंकुरण) आसानी से कराकर पौध तैयार की जा सकती है।

मुख्य खेत में सीधे बुवाई करने की अपेक्षा पौधशाला में पौधे तैयार करके रोपण करने से बीज की मात्रा में कमी की जा सकती है।

पौधशाला में पौध तैयार करने से रोग कीट एवं खरपतवार नियंत्रण में सुविधा होती है तथा प्रति इकाई क्षेत्र में शत–प्रतिशत पौधों की संख्या सुनिश्चित की जा सकती है जो सीधे बीज बुवाई द्वारा सम्भव नहीं है।

पौध तैयार करके व विक्रय करके पैसा कमाया जा सकता है।

मिट्टी का चुनाव एवं तैयारी

पौधशाला के लिए स्थान का चुनाव के उपरान्त यदि मिट्टी अधिक हल्की या भारी हो तो आवश्यकतानुसार कम्पोस्ट की खाद या रेत (बालू) मिलाकर उसे उपयुक्त बना लेना चाहिए। उदासीन (पी0एच0 7.0) बलुई दोमट मिट्टी पौधशाला के लिए अच्छी मानी जाती है जुताई करने के उपरान्त इसमें से ढेले, कंकड, पत्थर, खरपतवार इत्यादि साफ करके मिट्टी को अच्छी प्रकार भुरभुरी बना लेना चाहिए ।

क्यारियाँ बनाना

वर्शा ऋतु में क्यारियाँ 3 x 1 वर्ग मी. आकार की तथा भूमि की सतह से 15–20 सेमी. ऊँची बनाते हैं और ग्रीष्म तथा शरद ऋतु में 3 x 1 वर्ग मीटर आकार की समतल क्यारियों में भी पौधे उगाये जा सकते हैं। क्यारियाँ ऊँची होने से जड़ों में वायु संचरण बराबर अच्छा बना रहता हैं।

भूमि शोधन

भूमि का शोधन करने से हाँनिकारक रोग व्याधियों, कीड़े–मकोडों एवं खरपतवारों से निजात पाया जा सकता है। भूमि शोधन की निम्न विधियाँ है–

(क) सूर्य प्रकाश से भूमि का शोधन (मृदा सौर्यीकरण)

सूर्य के प्रकाश से भूमि का शोधन करने की प्रणाली को मृदा सौर्यीकरण कहते है। पौधशाला के स्थान पर मई–जून माह में मिट्टी अच्छी प्रकार तैयार करके क्यारियाँ बनाते है और क्यारियों की हल्की सिंचाई करके 200 गेज मोटी एवं पारदर्शी पालीथीन से ढककर चारों तरफ के किनारे मिट्टी से इस प्रकार दबा देते हैं कि वायु का आवागमन बन्द हो जाय। तत्पश्चात् क्यारी को उसी अवस्था में 4–6 सप्ताह के लिए ढ़का हुआ ही छोड़ देते हैं जिससे फफूँद, हानिकारक कीड़े–मकोड़े एवं उनके अण्डे, प्यूपा, लार्वा एवं खरपतवार के बीज भी नष्ट हो जाते है। साथ ही साथ मिट्टी में उपस्थित फास्फोरस, पोटाश व अन्य सूक्ष्म तत्वों की उपलब्धता भी बढ़ जाती है।

(ख) फफूँदीनाशकों से भूमि शोधन

रासायनिक फफूँदीनाशक कैप्टान या थीरम 5 ग्राम/वर्गमीटर नर्सरी की क्यारी में मिलाकर शोधन किया जाता है इसके बाद बीज की बुवाई की जाती है।

(ग) कीटनाशकों से भूमि शोधन

मृदा का शोधन क्लोरोपाइरीफास, फ्यूराडान आदि कीटनाशकों से करते है ताकि विभिन्न प्रकार के कीड़ों के लार्वा, प्यूपा इत्यादि से पौधों को कोई नुकसान न हो।

(घ) जैव नियंत्रकों द्वारा

पौधशाला की मिट्टी का शोधन ट्राइकोडर्मा विरिडी, ट्राइकोडर्मा हारजिएनम जैव नियंत्रक की 10–25 ग्राम मात्रा को प्रति वर्ग मीटर क्षेत्र की दर से प्रयोग करते हैं। जैविक रूप से कीट नियंत्रण के लिए नीम गिरी के अर्क का या ब्यूबेरिया वैसियानाका प्रयोग किया जा सकता है।

रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी (उ0प्र) 284003

(ड़) फार्मलीन का प्रयोग

4.0 प्रतिशत फार्मलीन के घोल का क्यारियों के उपर छिड़काव करते है। तत्पश्चात् 200 गेज मोटी पारदर्शी पालीथीन चादर से 24—48 घण्टों तक ढकते है। इसके उपरान्त पालीथीन हटा देते है और पुनः 2—3 दिनों तक क्यारी को खुला छोड़ देते है। ताकि विशैली गैस बाहर निकल जाय। इससे हानिकारक रोग व कीड़ों का नियंत्रण किया जा सकता है।

बीज शोधन

कैप्टान या थीरम या कार्बन्डाजिम की 2.5 ग्राम मात्रा प्रति किग्रा बीज के लिए प्रयाप्त होती है। जैविक विधि के लिए ट्राइकोडरर्मा नामक जैव फफूँदनाशक की 5 ग्रा./किग्रा. बीज की दर से प्रयोग करते हैं। इसके बाद इन शोधित बीजों की बुवाई करते हैं।

एक हेक्टेयर क्षेत्र में फसल लगाने के लिए विभिन्न सब्जियों के लिए निम्नलिखित क्यारियों की संख्या व बीज की आवश्यकता होती है—

सब्जी का नाम	क्यारियों की संख्या	बीज की मात्रा (ग्राम)	क्षेत्र की आवश्यकता (वर्ग मीटर)
टमाटर	12	300—400	50—60
बैंगन	12	300—400	50—60
शिमला मिर्च	13	300—400	60—80
मिर्च	12	250—300	50—60
फूल गोभी (अगेती)	12	500—600	60—80
फूल गोभी (मध्यम)	12	400—500	60—80
फूल गोभी (पछेती)	12	250—400	60—80
ब्रोकली	12	500—600	60—80
पत्तागोभी	12	300—350	60—80
गाँठ गोभी	18	800—900	80—100
प्याज	45	5000—7000	200—250

पौधशाला में बीज की बुवाई

बीजों की बुवाई इस प्रकार से की जानी चाहिए ताकि सभी पौधों को सूर्य का प्रकाश एवं हवा का आवागमन बना रहे। अन्यथा जड़ों के पास नमी की अधिकता होने से 'डैम्पिंग आफ' नामक बीमारी की शुरूवात हो जाती है जिससे पौधे जमीन की सतह से गलने लगते हैं। लाइन में बीजों की बुवाई करने के लिए क्यारियाँ उत्तर—दक्षिण की तरफ लम्बी (3x1 मीटर) बनाते हैं तथा पूरब—पश्चिम दिशा में 5 सेमी. दूरी पर पतले—पतले निशान (लाइन) बनाते हैं तथा इन्हीं लाइनों पर बीजों की बुवाई 1—2 सेमी. की दूरी पर करते हैं तथा बुवाई करने बाद कम्पोस्ट, रेत व मिट्‌टी के मिश्रण (2:1:1) से ढक देते हैं। उर्वरक मिश्रण की तह 0.5 सेमी. मोटी होनी चाहिए।

क्यारियों की पलवार (मल्चिंग) करना

मल्चिंग के लिए स्थानीय स्तर पर उपलब्ध सरकण्डें की सूखी पत्तियाँ, कॉस, सूखी घास, पुवाल, गन्ने की सूखी पत्तियाँ इत्यादि का प्रयोग किया जा सकता है। वर्षा ऋतु में यदि बीज बुवाई के प्रारम्भ के 4—6 दिनो तक वर्षा होने का डर हो तो मौसम खराब होते ही क्यारी को पालीथीन चादर से ढका जा सकता है परन्तु धूप होने के साथ पालीथीन चादर हटा देनी चाहिए अन्यथा जमाव पर बुरा असर पड़ता है।

सिंचाई

मल्चिंग करने के तुरन्त बाद हजारे की सहायता से हल्की सिंचाई के बाद सुबह और शाम हल्की सिंचाई करते रहना चाहिए । जब तक कि पौधा 20—25 दिन का न हो जाए। वर्षा से अधिक पानी को पौधशाला से बाहर निकालने की व्यवस्था करनी चाहिए। पौध तैयार होने के 22—25 दिनों बाद पौधों की कठोरीकरण करने के लिए सिंचाई बन्द कर देनी चाहिए। परन्तु पौध उखाड़ने के एक घण्टा पूर्व हल्की सिंचाई अवश्य कर देनी चाहिए अन्यथा पौधो की जड़ों के टूटने की आशंका बनी रहती है। क्यारियों की सिंचाई फुब्वारे से ही करनी चाहिए अन्यथा अधिक पानी (सिंचाई) से पौधे जड़ के पास से (नमी की अधिकता में) गिरने/गलने लगते है।

क्यारियों से पलवार (मल्च) हटाना

क्यारियों में समय से पलवार हटाना उतना ही महत्वपूर्ण है जितना पलवार लगाना। कारण यह कि पलवार के दौरान जमाव के बाद

पौधो के तनो की बढ़ती हुई लम्बाई उनमें आर्द्रगलन बीमारी को बढ़ा देती है। अतः यह ध्यान रखना चाहिए कि जैसे ही 50 प्रतिशत बीजो में सफेद अॅखुआ (धागेनुमा आकार) दिखलाई दे पलवार हटा देनी चाहिए। क्योंकि जितना छोटा अॅखुआ होगा पौंध उतना ही मजबूत और स्वस्थ होगा साथ ही जड़ के पास से गलकर गिरने की सम्भावना भी उतनी ही कम होगी।

खरपतवार नियंत्रण

पौधशाला की क्यारियों से खरपतवार जहाँ तक हो सके समय–समय पर हाथ से निकालते रहना चाहिए। पौधशाला में रासायनिक खरपतवारनाशी का प्रयोग करने से जमाव प्रभावित होता है। अतः अच्छा होगा कि खरपतवार से बचाव के लिए पौधशाला की क्यारी का शोधन मृदा सौर्यीकरण विधि से कर लिया जाय ताकि खरपतवार की अधिकतर समस्या स्वतः ही समाप्त हो जाय।

रोपण से पूर्व पौधों का उपचार

पौध रोपण के लिए उखाड़ने से एक दिन पूर्व पौधशाला की क्यारी में आवश्यकतानुसार कीटनाशक और फफूँदनाशक दवा का एक छिड़काव अवश्य कर देना चाहिए ताकि रोपण के बाद पौधो को कीड़ों व बीमारियों से बचाया जा सके। इसके लिए 1.5 मिली लीटर क्लोरपायरीफास 20 ई0सी0 और 2 ग्राम मैन्कोजेब प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर पौधों के ऊपर छिड़काव करना चाहिए ताकि पौध रोपण के 10–15 दिनों बाद तक सुरक्षित रहें।

पौध उखाड़ने के बाद जड़े खुली (बिना मिट्टी की) हो जाती है ऐसी अवस्था में पौध रोपण के लिए ले जाते समय पौधों के सूखने का डर रहता है अतः प्रयास करना चाहिए कि इनकी जडों पर मिट्टी का हल्का लेप लगा दिया जाय। इसके लिए मिट्टी गोबर की खाद और उपलब्ध होने पर जैविक खाद एजेटोबैक्टर या एजोस्पाइरिलम या फास्फेट कल्चर की एक बर्तन मे लेकर पानी डालकर गाढ़ा घोल तैयार कर लेते हैं और 20–100 पौधों का बण्डल बनाकर गाढ़े घोल में डुबो देते हैं। यह उपचार हमेशा छाया में ही करना चाहिए।

कद्दूवर्गीय सब्जियों की पौध तैयार करना

कद्दूवर्गीय सब्जियों के बीज प्रायः सीधे खेत में बोये जाते हैं, परन्तु इसमें हमें कई स्तरों पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता हैं। पूर्णरूप से जमाव न होने के कारण जगह–जगह खाली स्थान शेष रह जाते हैं। बीजों का जमाव तभी हो पाता है जब तापमान अनुकूल होता है खासतौर से जायद की खेती करते समय इसके लिए हम कद्दूवर्गीय सब्जियों की भी पौध तैयार कर सकते हैं। यदि पौध पालीथीन की थैलियों में इस प्रकार तैयार करे कि उनकी जड़ो को बिना क्षति पहुँचाए रोपण किया जा सके तो प्रति हेक्टेयर पौध संख्या भी सुनिश्चित कर सकते हैं। इस प्रकार सब्जियों में मुख्य रूप से लौकी, नेनुआ, तोरई, करेला चिचिण्डा, कुम्हड़ा, खरबूजा, तरबूजा इत्यादि आता हैं। दिसम्बर माह में इनके बीजों को रात भर पानी में भिगोने के बाद गर्म स्थान में रखकर अंकुरण कराकर थैलियों में बुवाई करते हैं जिनमें कम्पोस्ट, बालू, मिट्टी का 2:1:1 के अनुपात का मिश्रण भरा हो और तली में 1–2 छेद अवश्य हो ताकि आवश्यकता से अधिक पानी बाहर निकल जाय। फरवरी माह में 15–20 दिनों में जब तापमान उपयुक्त होता हैं, पौधे 1–1.5 फीट के हो जाते है, उसी समय पर (फसल के अनुसार) मेड़ व नालियाँ बनाकर तथा मेड़ों पर 1.0 मीटर की दूरी पर रोपाई कर देना चाहिए। रोपण करने के लिए खाद व उर्वरकों का प्रयोग पूरे क्षेत्र में न करके सिर्फ गड्ढों में करना चाहिए और इन्ही गड्ढों में (पालीथीन की थैली सावधानी पूर्वक हटाकर) लगाकर नाली द्वारा सिंचाई कर देना चाहिए।

रोग एवं कीड़ों के लिए एकीकृत प्रबन्धन

अप्रैल के प्रथम सप्ताह में मिट्टी की अच्छी तरह जुताई व गुड़ाई करने के बाद घास निकालकर आवश्यकतानुसार सड़ी गोबर की खाद, कम्पोस्ट एवं बालू मिलाकर भुरभुरा बना लें।

पौधशाला में फव्वारे से हल्का पानी डालकर गर्मी के दिनों में उसको सफेद पालीथीन द्वारा ढककर अच्छी तरह चारों तरफ मिट्टी से बन्द कर दें।

पौधशाला को पुनः गुड़ाई करके इसमें नीम की बारीक खली 100 ग्राम/मीटर क्षेत्र के हिसाब से डालकर अच्छी तरह मिला दे। उसके अगले दिन मिट्टी में ट्राइकोडर्मा नामक जैविक फफूँदी नाशक को 25 ग्राम/वर्ग मी. क्षेत्रफल की दर से मिलाकर आवश्यकतानुसार पानी छिड़क दें। इस बीज का शोधन ट्राइकोडर्मा से 5–10 ग्राम/किग्रा बीज की दर से करके लगाना चाहिए।

बैंगन एवं मिर्च के बीज के लिए कार्बेण्डाजिम 2.5 ग्राम/किग्रा बीज की दर से शोधित बीज का प्रयोग ट्राइकोडर्मा डालने के लगभग 4–5 दिन के बाद करना चाहिए। गोभी वर्गीय सब्जियों को स्ट्रेप्टोसाइक्लिन से शोधित करके लगाना चाहिए।

पौधशाला में मौसम के अनुसार सफेद मक्खी, वर्षा, तेज सूर्य का प्रकाश, अधिक ठण्ड या अन्य बाहरी प्रकोप से बचने के लिए एग्रोनेट, पालीथीन, मसलीन एवं हरी छायादार जाली की

मेहरावदार संरचना बनाकर प्रयोग करना चाहिए इसको समयानुसार हटा भी सकते है।

बीज जमने के बाद एक बार पुनः ट्राइकोडर्मा का 1 प्रतिशत घोल बनाकर अर्थात 10 ग्राम/लीटर पानी में घोलकर अच्छी तरह नर्सरी वेड को भिगो देना चाहिए।

पर्ण सुरंगक कीट के संक्रमण से बचाव के लिए पौधशाला में नाइट्रोजन का प्रयोग कम करना चाहिए तथा नीम की गिरी का 4 प्रतिशत घोल बनाकर अर्थात 40 ग्राम/लीटर पानी में भिगाकर उसके छनित द्रव्य का छिड़काव करना चाहिए।

शिमला मिर्च की पौधशाला में कॉपर आक्सीक्लोराइड 3 ग्राम/लीटर पानी के हिसाब से घोलकर लगभग 15–20 दिन बाद एक बार छिड़काव करने की आवश्यकता पड़ती है।

पौध को उखाड़ते समय पौधशाला में पर्याप्त नमी होनी चाहिए ताकि उसका जड़ टूटे नहीं और रोगाणुओं का संक्रमण नहीं हो सके।

पौधे को उखाड़ने के बाद जड़ को इमिडक्लोप्रिड 0.25 प्रतिशत रसायन के घोल में आधा घण्टा डुबाकर उसके बाद ट्राइकोडर्मा 1 प्रतिशत घोल में भिगाने के बाद रोपाई करें।

स्वस्थ्य नर्सरी उगने के लिए विभिन्न कौशल, तकनीक व वैज्ञानिक प्रबंधन की आवश्यकता होती हैं। नया व कोमल पौध को अच्छी तरह से पोषण और नर्सरी क्षेत्र में संरक्षित किया जाता हैं जिससे अच्छे बीज अंकुरण व स्वाथ्य पौध उत्पादन के साथ ही साथ काम बीज व उच्च गुणवत्तायुक्त उत्पादन प्राप्त होता हैं। इस प्रकार नर्सरी तैयार करने पर किसान भाइयों को उत्पादन के साथ–साथ अधिक लाभ प्राप्त होता हैं।

बुन्देलखण्ड के लिए उद्यानिकी में संभावनायें

रंजन श्रीवास्तव[1] एंव रश्मि पंवार[2]

बागवानी विभाग फलों, सब्जियों और फूलों के उत्पादन और रखरखाव के साथ–साथ मसालों, औषधीय और सुगंधित पौधों का प्रबंधन करता है। किसानों द्वारा उत्पादित पारंपरिक फसलों की तुलना में बागवानी फसलों की खेती अत्यधिक विशिष्ट, तकनीकी और लाभकारी उद्यम है। इसके अलावा बागवानी फसलों के बहुमत, प्रकृति में खराब होने के कारण, उनके विकास के लिए व्यवस्थित योजना की आवश्यकता होती है। बागवानी विकास ने हाल के वर्षों मे अधिक महत्व ग्रहण किया है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र की भूमि की उपयोग के विविधीकरण हेतु लाभकारी के रूप में पहचान की गई है। जो रोजगार के अवसरों में वृद्धि प्रदान करता है। प्रति यूनिट क्षेत्र में बेहतर प्रतिफल और पोषण के अंतराल को भरने में बागवानी ने एक आवश्यक पहल की है। बुंदेलखण्ड क्षेत्र में कुल 13 जिले हैं। जिनमें झाँसी, ललितपुर, जालौन, हमीरपुर, महोबा, बाँदा एंव चित्रकूट सभी उत्तर प्रदेश में हैं जबकि दतिया, टीकमगढ़, छतरपुर, पन्ना, सागर एवं दमोह मध्य प्रदेश में हैं।

बुन्देलखण्ड के बदलते जलवायु परिवर्तन के चलते अब किसान भी परंपरागत खेती के साथ ही अन्य विकल्पों की तलाश में जुट गये हैं। किसान अब सब्जी एवं फलों की खेती की ओर आकर्षित हो रहे हैं। विगत कई वर्षों से सूखे से हुए घाटे से निपटने के लिए किसान उद्यानिकी विकल्प की ओर कदम बढ़ा रहे हैं। किसानों की यह सोच उनके आर्थिक हालातों को बदलनें में कारगर सिद्ध हो सकती है। चूंकि बुन्देलखण्ड क्षेत्र के अधिकतर जिलों में 75 प्रतिशत हल्की एवं मध्यम भूमि है (विशेषतः टीकमगढ़) जो अनार की बागवानी के लिए बहुत उपयुक्त है। जलवायु परिवर्तन से वर्षा की कमी की अनियमितता से जूझ रहे किसानों के लिए अनार की बागवानी वरदान साबित होगी। कई किसानों ने बगीचे में अनार के पौधे लगाये थे। दो वर्ष बाद यह सभी पेड़ फल देने लगे और बीते वर्ष किसानों ने 50 हजार रूपये के अनार बाजार में बेचे थे और इस वर्ष तो अनार के पेड़ों के बीच में सब्जी की फसलें भी तैयार की गईं हैं जिससे किसानों को और भी लाभ हुआ है। जैसा कि समस्त बुंदेलखण्ड पानी की कमी से जूझ रहा है, ऐसे में किसान भाई बागवानी में ड्रिप सिंचाई पद्धति को अपनाकर लाभ ले सकते हैं। ड्रिप एवं फव्वारा सिंचाई उपकरणों पर शासन की ओर से किसानों को छूट भी दी जा रही है। रबी और खरीफ की फसलों में पानी की कमी से ज्यादा मुनाफा नहीं होता है।

कई किसान सूखे के प्रभाव के चलते पलायन करने को मजबूर हो गए हैं परन्तु जागरूक किसानों ने इस संकट की घड़ी में भी कुछ अलग करने की ठानी है और खेती को लाभ का धंधा ही बना दिया है। टीकमगढ़ क्षेत्र में बागवानी से किसानों को राहत मिली है और आर्थिक रूप से वे सुदृढ़ हुए हैं। अनार के फलों की अच्छी कीमत बाजार में मिल रही है। अनार के प्लांटिंग मैटीरियल (पौध प्रवर्धन सामग्री) की माँग पिछले दो वर्षों में सबसे अधिक रही है। बुन्देलखण्ड में परंपरागत खेती में हो रहे नुकसान को देखते हुए सरकार अब बागवानी को और बढ़ावा देगी। खासतौर से आम, अमरूद, आंवला, नींबू, बेर, बेल और अनार के पौधे लगाये जाएगे। इसके लिए सहायता भी दी जाएगी। बागों के साथ ही इनमें सब्जी, मसाला और फलों की खेती को भी प्रोत्साहन दिया जाएगा। इससे किसानों को आर्थिक सम्पन्नता के साथ ही क्षेत्र में हरियाली को बढ़ावा मिलेगा। साथ–साथ ही मृदा का पोषण स्तर भी ऊँचा होगा।

जिलों में उद्यानिकी विभाग में आर.के.वी.वाई. योजना के तहत ऑनलाइन पंजीयन किया जा रहा है। प्लास्टिक लाइनिंग, ऑफ फार्म पौण्ड, नश्वर उत्पादन भण्डारण, औषधि मिशन में अश्वगंधा, तुलसी कालमेघ, सफेद मूसली, कोलियस इत्यादि, प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना के तहत ड्रिप एवं स्प्रिंकलर, एंव अन्य सभी उद्यानिकी योजनाओं के अंतर्गत उद्यानिकी विभाग की वेबसाइट जाकर किसान पंजीयन करा सकते हैं।

मध्य प्रदेश सरकार ने खरीफ मौसम (जुलाई–सितंबर) मे प्याज का रकवा दस गुना बढ़ा दिया है। इससे अक्टूबर में भी प्याज की आवक बढ़ेगी व कीमतें कम होंगी। पन्ना जिले में प्याज की खेती को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। पन्ना जिले में भी फल वृक्षों के

[1]प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, [1]सहायक प्राध्यापक, उद्यान विज्ञान विभाग
गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर–263145 उत्तराखण्ड

लगाने पर ओर भी जोर दिया जा रहा है। अनाज एवं दालों की एकल फसल लेने से कभी–कभी किसानों को भारी नुकसान होता है। अतः परंपरागत खेती में समयानुसार आवश्यक सुधार कर आय में वृद्धि की जा सकती है। शुष्क क्षेत्रों एवं मध्यम व निम्न स्तर मृदाओं में आंवला, बेर, बेल जैसे फलों की खेती की जा सकती है। परंपरागत बाग तो बहुत कम हैं। अतः अच्छी किस्मों की पौध सामग्री यदि किसानों को उपलब्ध हो तो किसान वैज्ञानिक तकनीकी अनुसार फलों के बाग रोपित कर सकते हैं। मेढ़ों पर पपीता लगाया जा सकता है। फलों के फलत में आने से पहले अंतरवर्ती सब्जी की फसलें ली जा सकती है। आंवला से लघु उद्योगों जैसे अचार, कैण्डी, मुरब्बा आदि उत्पाद बनाने को बढ़ावा भी मिल सकता है। नींबू की माँग भी वर्ष भर होती है। अतः कागजी नींबू जैसी प्रजातियों को लगाने के लिए भी किसानों को प्रोत्साहित किया जा सकता है।

छतरपुर जिले में किसान सब्जियों में टमाटर, शकरकंद, प्याज एवं फूलों में गेंदा की खेती करते हैं। जागरूक किसान कीट प्रबन्धन हेतु सब्जियों के खेत की मेड़ों पर गेंदा लगाते हैं इससे लागत मूल्य कम होता है एवं गेंदा फूल की बिक्री से अतिरिक्त आमदनी होती है। फलों के व्यवस्थित बाग बहुत कम हैं आंवला तो जंगल से ही एकत्र किया जाता है। अच्छी किस्मों के फल वृक्षों की संख्या बहुत कम है। अमरूद एवं आम की सघन बागवानी अपनाये जाने पर जोर दिया जा रहा है। एकल खेती की अपेक्षा एकत्रित कृषि के महत्व को समझाया जा रहा है। एकत्रित कृषि में बागवानी का विशेष महत्व है। शुष्क क्षेत्र होने की वजह से सूक्ष्म जलग्राही फल वृक्षों की बागवानी उपयोगी है। अतः बेर, आंवला जैसे फल वृक्षों की खेती अत्यधिक लाभकारी सिद्ध हो सकती है।

इस प्रकार नवीन एवं उच्च तकनीकी अपनाकर बुन्देलखण्ड के किसान एवं उद्यमी लाभ ले सकते हैं। बुन्देलखण्ड क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थितियों को देखते हुए उद्यानिकी की अपार सम्भावनाएं हैं।

फल-सब्जियों के पेय पदार्थ

घनश्याम अबरोल

हमारा देश गर्म जलवायु वाला देश है। वर्ष के 4–5 महीने छोडकर शेष महीने में यहा शीतल पेय पदार्थों का प्रयोग किया जाता है। आजकल गैस युक्त कृत्रिम पेयों का प्रयोग बढ रहा है जिनमें फलों का रस नहीं होता है। इनसे चीनी या सैकेरीन, खटास तथा सुगन्ध मिलाई होती है। सैकेरीन से हमें ऊर्जा नही मिलती है जबकि फल रस की शर्करा से हमें ऊर्जा प्राप्त होती है। अतः इस प्रकार के कृत्रिम पेय पदार्थो का पोषण की दृष्टि से कोई महत्व नही है। फलों के रस से बने पेय पदार्थ स्वास्थ्य क लिए बहुत लाभदायक होते है क्योंकि इनमें हमें विटामिन तथा खनिज लवण पर्याप्त मात्रा में मिलते है।

उपयुक्त फलः फलों के पेय बनाने के लिए नींबू, संतरा, माल्टा, ग्रंपफ्रूट, कागजी नींबू, आम, सेब, अन्ननास, स्ट्रॉबेरी, अंगूर, अनार, शहतूत फालसा, जामुन, बेल आदि फल प्रयुक्त किए जाते है। मौसम में तब से सस्ते दामों पर मिलते है। इनसे विभिन्न प्रकार के पेय पदार्थ बनाकर रखे जा सकते है जो वर्ष के शेष महीनों में उपयोग किए जा सकते है। पेय बनाने के लिए ताजे, तथा दागरहित फलों का प्रयोग करना चाहिए। पेड से तोड लेने के बाद जिनते जल्दी हो सके फलों का रस निकाल कर उसका परीक्षण कर लेना चाहिए। अच्छी किस्म का फलों का रस उचित मात्रा मे उन्ही फलों रे मिल सकता है जो स्वस्थ्य तथा ताजे हो। रस निकालने के लिए ऐसे फलों को लेना चाहिए जो कच्चे या अधिक पके या दाग तथा फफूंद लगे न हो। रस निकालने के बाद यदि उसका जल्दी ही परीक्षण न किया जाए तो इसके रंग, स्वाद तथा अन्य गुणों पर बुरा असर पडता है। उसमें खराबियां उत्पन्न होने लगती है।

रस निकालने की विधियांः विभिन्न फल–सब्जियों से रस निकालने की विधी उनकी रचना पर निर्भर करती है। अलग–अलग फल–सब्जियों से रस निकालने के लिए अलग–अलग विधियां प्रयोग में लाई जाती है। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि फल से तुरन्त निकाला हुआ रस उतम गुणो से युक्त होता है। इसलिए उसे तुरन्त परिरक्षण की व्यवस्था करनी चाहिए। रस को हवा, लोहा, ताम्बा, पीतल आदि के सम्पर्क में नहीं लाना चाहिए क्योंकि इससे उसके स्वाद तथा गुणों पर बुरा असर पडता है। कुछ प्रमुख फल–सब्जियों से रस निकालने की विधि इस प्रकार हैः––

1. **संतराः–** फल को छीलकर फांको का अलग कर लेना चाहिए। फांकों पर रेशे भी निकाल लेने चाहिए। फिर इन्हे हाथ से चलाई जाने वाले रस निकालने की मशीन में डालकर रस निकाल लेना चाहिए। रस को एलमिनियम या स्टेनलैस स्टील की छलनी से छान लेना चाहिए ताकि बीज अलग हो जाए।
2. **नींबूः–** घरेलू स्तर पर नींबू का रस लकड़ी के रस निकालने चाहिए, लेकिन व्यापारिक स्तर पर इनका रोजिंग मशीन से निकाला जाता है।
3. **माल्टा, मौसम्मी तथा चकोतराः–** इनका रस हाथ से या फांकों को काटकर मशीन से निकाला जाता है। हाथ से पूरा रस नहीं निकल पाता है।
4. **आमः–** अच्छी तरह पके हुए आमों को हाथ से पिलपिला कर गूँदे को ढीला कर लेना चाहिए। इसके बाद से दबाकर रस का एल्युमिनियम की छलनी में रस इकठ्ठा कर लेना चाहिए। अब इसे रगड़कर गूदा तैयार कर लीजिए। छलनी पर रगड़ने से छिलके रेशे आदि अलग हो जाते है। बडे पैमाने पर आम का रस निकालने के लिए पल्पर नामक मशीन का प्रयोग किया जाता है। फलों को छीलकर मशीन के अन्दर डाल देते है। इसमें एक तरफ से आम का गूदा तथा दूसरी तरफ से गूठली निकल आती है।
5. **सेबः–** फल को छोटे–छोटे टुकडों में काट लीजिए या कदूकस में लच्छे बना लीजिए। काटने अथवा लच्छे बनाते समय इनका रंग एंजाइमों की क्रिया से भूरा पडने लगता है। इससे रस के गुणों पर दुष्प्रभाव पडता है। इसलिए विधियों से एन्जाइम्स को निष्क्रिय करना आवश्यक हैः–

   1. फल के टुकडों पर विटामिन सी एस्कार्बिक अम्ल 0.2 प्रतिशत छिडकना चाहिए।

रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी (उ0प्र) 284003

2. दो प्रतिशत विटामिन सी के घोल का छिड़काव करने से भूरेपन को रोका जा सकता है। घरेलू स्तर पर सेब का रस लकडी के बास्केट प्रेस से निकाला जाता है। लेकिन बडे पैमाने पर हाइड्रालिक प्रेस से सेब का रस निकाला जाता है।

6. शहतूत, फालसा, जामुन तथा रंगीन अंगूरः– इन फलों का रस निकालने के लिए फलों को धोकर थोडे से पानी में लगभग 10 मिनट तक पकाना चाहिए लेकिन यह ध्यान रहे कि पानी का तापमान 60–70 डिग्री सेंटीग्रेड से अधिक न हो। ऐसा करने से फल मुलायम हो जाते है। अब इन्हें छलनी पर रगडकर रस निकाल लेना चाहिए। बडे पैमाने पर इनका रस बास्केट प्रेस से निकाला जाता है।

7. टमाटरः– टमाटरों को काटकर उसके रस में ही 10–15 मिनट पका लेते हैं। ताकि वे गल जाएं। पकाते समय इसमें थोडी सी चीनी मिला देने से रंग आकर्षक बना रहता है। इसे स्टेनलैस स्टील अथवा एल्युमिनियम की छलनी या पलपर में से गुजार कर रस प्राप्त कर लेते है। बीज तथा छिलकें अलग हो जाते है।

पेय बनाने में सावधानियां

1. फल से रस निकाल लेने के बाद जितनी जल्दी हो सके इसे परिरक्षित कर लेना चाहिए। अधिक समय तक हवा के सम्पर्क में रहने से इसके गुणों का ह्रास होने लगता है। विटामिन 'सी' कम होने लगता है, रंग भूरा पडने लगता है।
2. पेय बनाते समय रस को पकाया नहीं जाता, बल्कि चासनी को पकाकर तथा छानकर कमरे के तापमान तक ठण्डा कर लेते है। तत्पश्चात इसमें रस मिलाया जाता है। ऐसा करने से रस के पोषक तत्वों का ह्रास नहीं होता है।
3. स्क्वैश, कार्डियल, क्रश आहद पेय पदार्थो को बोतल में भर लेने के बाद, ढक्कन को सीलबन्द करना आवश्यक है अन्यथा परिरक्षी पदार्थ धीरे–धीरे उड़ जाएगा तथा पेय में किण्वन या फफूंदी लग जाएगी।
4. पोटेशियम–मेटा–बाइसल्फाइट को थोडे से पानी या पेय में अच्छी तरह घोलकर चासनी के ठण्डा हो जाने के बाद मिलाना चाहिए। गरम चासनी में मिला सल्फर डाइऑक्साइड गैस उड़ जाएगी।
5. बोतलों को एक बार खोल लेने के बाद पेय का जितनी जल्दी हो सके प्रयोग कर लेना चाहिए अन्यथा इसमें फफूंदी लग जाएगी। बोतलों से पूर्व हिला लेना चाहिए।

परिक्षण की विधियाँ

1. पास्च्युरीकरण
2. रासायनिक पदार्थो के प्रयोग से
3. चीनी द्वारा
4. सांद्रीकरण द्वारा
5. कम तापमान; बर्फ में जमा करद्ब
6. कार्बनीकृत रस
7. स्प्रे ड्रायर से पाउडर बनाकर।

सेब के रस का पास्च्युरीकरण विधि से परिरक्षण

1. सेब के पूर्ण विकसित फल लेकर साफ पानी से धो लीजिए। पेड से गिरे हुए, कटे हुए तथा चिडियों द्वारा कुतरे हुए फल भी सर निकालने के काम लाए जा सकते है, लेकिन उन्हें स्टेनलैस चाकू से काटकर अलग कर देना चाहिए।
2. फल को छोटे–छोटे टुकडो अथवा लच्छों को एक मोटे कपड़े में लपटने के बाद छोटे बास्केट प्रेस में दबाकर रस निकाल लीजिए।
3. रस का स्टेनलैस स्टील अथवा चीनी मिट्टी के बर्तन मे इकट्टा कर लीजिए।
4. टब रस को एक मलमल के कपड़े से छाल लिजिए। इसे एक भगोने में तेज आँच 90–95 डिग्री सेंटीग्रेड पर गरम कीजिए।
5. टब रस को तुरन्त उबलते पानी से धूली हूई बोतलों में ऊपर तक भरकर क्राउन कार्किग मशीन से सीलबन्द कर दीजिए। इस बात का ध्यान रखें कि बोतलों में भरते समय रस का तापमान 85 डिग्री सेंटीग्रेड से कम म हो।
6. एक भगोने में पानी डाल लीजिए। भगोने की तली में एक मोटा कपड़ा बिछा दीजिए ताकि बोतलें भगोने की तली के सीधे सम्पर्क में आकर टूटने न पाएं। पानी को लगभग 85 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान तक गरम कीजिए और बोतलों को इसमें डाल दीजिए।
7. उसी तापमान पर बोतलों को 30 मिनट तक पड़ा रहने दीजिए। यह ध्यान रहे कि सूखे स्थान पर भण्डारित कर लीजिए।

   अन्य फलों के रस को भी इसी विधी द्वारा परिरक्षत किया जा सकता है। अन्नानास, लीची, आम, अंगूर, अनार, लोकाट आदि।

इस विधि से रस का परिरक्षण करने में कुछ तकनीकी कठिनाईयां भी हैं जो इस प्रकार हैः–

1. इसके लिए विशेष तरह की बोतलों जिनमें क्राउन कार्क लगाया जा सके तथा क्रॉउन कार्किंग मशीन का होना आवश्यक है।
2. पास्च्युरीकरण करते समय बोतलों के टूटने का डर रहता है।
3. बोतल को एक बार खोल लेने पर रस का तुरन्त इस्तेमाल करना पडता हैं क्योंकि अधिक समय तक रहने पर खुला रस खराब हो जाता है।

रासायनिक परिरक्षी द्वारा परिरक्षण

परिरक्षी ऐसे पदार्थ है जिनके प्रयोग से खाद्य पदार्थो के किण्वन, खटास उत्पन्न होना या अन्य चाही क्रियाएं रुक जाती है, अथवा मन्द हो जाती है। नमक, चीनी, एसिटिक अम्ल तथा मसाले परिरक्षी पदार्थ श्रेणी–एक में आते है। जबकि रासासनिक परिरक्षी श्रेणी–दो में आते है।

भारतीय फल पदार्थ आदेश 1955 के अनुसार निम्नलिखित रासायनिक पदार्थो का प्रयोग के रुप में मान्य है। पोटेशियम–मेटा–बाइ–सल्फाइट, सल्फर डाइ आक्साइड तथा सोडियम बेंजोएट बेंजाइक एसिड।

स्क्वैश बनाने की विधिः

स्क्वैशः यह फल से निकाले गये सम्पूर्ण रस से बनाया जाता है अर्थात ऐसे रस में फल का गूदा भी रहता है। स्क्वैश में 25 प्रतिशत रस, 40 से 50 प्रतिशत चीनी तथा बाकी पानी की मात्रा होती है। इसमें 1 से 2 प्रतिशत साइट्रिक या टार्टरिक अम्ल, परिरक्षी पदार्थ, खाद्य रंग तथा इत्र एसेंस भी मिलाया जाता है।

बनाने की विधिः

1. फल का चुनाव तथा रस निकालना, अच्छे चुने हुए फलों का रस निकालकर उस अलग रख दीजिए।
2. चसनी बनानाः एक भगोने में आवश्यकतानुसार पानी तथा चीनी लेकर भगोने को आग पर रख दिया जाता है। इसे लकडी के लैडल कड़छी से तब तक चलाते रहना चाहिए जब तक चीनी घुल न जाये। एक उबाल आ जाने पर चासनी का मैल साफ हो जाएगा। भगोने के सतह पर जमा मैल को छेद वाली कड़छी से निकाल दीजिए तथा चासनी को साफ मलमल के कपड़े से छान लीजिए।
3. चासनी को ठण्डा करनाः रस मिलाने से पूर्व चासनी को कमरे के तापमान तक ठण्डा कर लेना आवश्यक है। रस को मग से उछालने या भगोने से ठण्डे पानी में कुछ देर रखने से चासनी ठण्डी हो जाती है। गरम चासनी में रस मिलाने से रस के पोषक तत्वों की क्षति हो जाती है। नींबू वर्गीय फलों के रस से बनाया गया स्क्वैश कड़वा हो जाता है तथा सल्फर डाइआक्साईड गैस उड़ जाती है।
4. रस निकालनाः अब चासनी कमरे के तापमान तक ठण्ड़ी जो जाये इससे रस मिला देना चाहिए।
5. परिरक्षी पदार्थ, खाद्य रंग तथा (इसैंस) इत्र मिलाना : रस मिलाने के बाद परिरक्षी पदार्थ को थोडे से पानी या स्क्वैश में अच्छी तरह घोलकर स्क्वैश में इतना मिलाना चाहिए कि यह आकर्षण लगने लगे। स्क्वैश में आवश्यकतानुसार थोड़ा सा इस इत्र भी मिलाया ता सकता है।
6. बोतलों में भरनाः तैयार स्क्वैश को उबालते पानी से धुली हुई साफ बोतलों में भरना चाहिए कि 3–4 सेमी. स्थान रिक्त रह जाये। अब इन पर ढक्कन लगाकर सीलबन्द कर लेना चाहिए। व्यापारिक स्तर पर स्क्वैश को बोतलों में भरने तथा ढक्कन लगाने का कार्य स्वचालित मशीनों द्वारा किया जाता है लेकिन घरेलू स्तर मर यह कार्य हाथ से किया जाता है। घर पर बनाये बए स्क्वैश को सीलबन्द करने के लिए ढक्कन पिय कार्क लगे बोतल को उल्टा करके गरम मोम में डुबो देना चाहिए। ऐसा करने से बोतल सीलबन्द हो जाती है।
7. भण्डार में रखनाः बोतलों पर लेबल चिपकाकर इसे ठण्डे तथा शुष्क भण्डार में रखना चाहिए।

छोटे स्तर पर फल–सब्जी परिरक्षण

छोटे पैमाने पर फल–सब्जी परिरक्षण एक लाभदायक व्यवसाय है। इसे अपनाकर किसान भाई आर्थिक लाभ कमा सकते है।

फल परिरक्षण उद्योग कुटीर स्तर पर स्थापित करने के लिए करने के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक हैः

1. कारखाना ऐसे स्थान पर लगाना चाहिए जहाँ आसपास के इलाकों से फल–सब्जियां आसानी से उपलब्ध हो जायें क्योंकि अधिकांश फल–सब्जियां जल्दी खराब होने के कारण दूर से मंगाने पर परिवहन में खराब होने लगती है।
2. कारखाना सड़क के किनारे हो ताकि ताजी फल–सब्जियां तथा उत्पादित खाद्य पदार्थो को लाने ले जाने में आसानी हो।
3. कारखाने के आसपास कोई ऐसा अन्य कारखाना न हो जिसमें धुंआ तथा अन्य दुर्गन्ध आती हो। क्योकि ऐसे वातावरण में उत्पादित पदार्थ की गुणवता पर बुरा असर पडता है।
4. फल–सब्जियां परिरक्षण के दौरान बेकार पदार्थो को फेंकने की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

5. कारखाने के चारों तरफ इतनी जगह होनी चाहिए ताकि आवश्यकता पडने पर इसे बढाया जा सकें।

6. फल–परिरक्षण कारखानें में पानी की बहुत आवश्यकता पडती है, इसलिए पानी की उचित व्यवस्था होना अति आवश्यक है। पानी शुद्ध होना चाहिए। प्रतिदिन लगभग 450 से 500 लीटर पानी की आवश्यकता पडती है।

7. कारखाने की रुप–रेखा इस प्रकार बनानी चाहिए कि उसमें एक कमरे की नाप लगभग 7.5 मीटर गुणा 6.0 मीटर हो। यह कमरा विभिन्न फल उत्पाद बनाने के लिए उपयुक्त होगा। फल–सब्जी, बर्तन तथा बोतल आदि धोने के लिए एक छोटा कमरा होना चाहिए। इसके अलावा एक कमरा कार्यालय के लिए तथा एक स्टोर कक्ष होना आवश्यक है। फर्श तथा पक्की होनी चाहिए। मुख्य कमरे के एक्जास्ट पंखे लगे होना आवश्यक है। ताकि गंदी हवा बाहर निकलती रहे कारखाने के अन्दर तथा बाहर पक्की नालियां बनी होनी चाहिए। ताकि पानी का निकास होता रहे। अन्दर की नालियों पर जाली लगी होनी चाहिए, जिससे चूहे अन्दर न आ सके। दरवाजे तथा खिड़कियों पर महीन जाली लगी होनी चाहिए, ताकि मच्छर, मक्खी, तिलचट्टें तथा कीडे अन्दर प्रवेश न हो सके।

8. कारखाने के चारो तरफ खुली जगह होना आवश्यक है।

9. कारखाने में काम आने वाले बर्तन एल्युमिनियम या स्टेनलेस स्टील के होने चाहिए।

10. मशीन तथा उपकरण ऐसे खरीदने चाहिए जो बहु–उद्देशीय हों, उदाहरण के लिए गूदा निकालने की मशीन में आम, टमाटर, अंगूर, केला, अन्नानास आदि फलों का गूदा निकाला जा सके।

11. उत्पाद खर्च कम करने के लिए कारखाने का लगातार चलते रहना आवश्यक है। यदि कारखाने को बीच–बीच में बन्द करना पड़ें तो बार–बार कुशल मजदूर मिलना मुश्किल हो जाता है। इससे उत्पाद खर्च भी बढ़ जाता है। मौसम में जो फल– सब्जी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हों, उनका गूदा अथवा रस बैरल अथवा कारबाय में परिरक्षीत कर लेना चाहिए। जैसे आम, पपीता, सेब, नाशपाती, अन्नाानास, माल्टा, संतरा, नींबू, टमाटर, आदि। इन्हें परिरक्षित करने की विधि पेय वाले खण्ड में बताई गई है। मौसम बीत जाने पर इनसे विभिन्न उत्पाद बनाने शुरु कर दीजिए। इस प्रकार कारखाने में वर्ष भर कुछ न कुछ पदार्थ बनते रहेंगें।

भारतीय फल–पदार्थ आदेश 1955 के अनुसार कारखाने कें स्वास्थ्य सम्बन्णी आवश्कतायें निम्नलिखित है। उत्मादक को लाइसेन्स इन्हीं के आधार पर दिया जाता है।

1. कारखाना स्वच्छ साफ वातावरण में बना हो। कमरों की दीवारों पर चूने की सफेदी या रंग–पेंटिग की गई हों दुर्गन्ध दूर करने के लिए निर्गनधीकरण का प्रयोग करना चाहिए।

2. दरवाजों पर जालीदार किवाड़ लगे होने चाहिए, जो कि स्वयं बन्द होते हो। खिड़की तथा रोशनदान भी जाली से बन्द होने चाहिए। फर्श तथा छत सीमेन्ट से पक्की बनी हो।

3. फल–सब्जी परिरक्षण में काम आने वसने उपकरणों को मांस तथा मछली के परिरक्षण में उपयोग नहीं करना चाहिए। यदि इन पदार्थो का परिररक्षण करना हो तो कारखाने को एक महीना पहले तथा एक महीना उत्पाद बनाने के बाद खाली रखना चाहिए।

4. कारखाना ऐसे स्थान पर स्थापित होना चाहिए जहाँ गंदगी न हो। कारखाने के अन्दर उत्पादन कक्ष, स्टोर तथा प्रांगण को साफ रखना अति आवश्यक है।

5. फैक्ट्री एक्ट 1934 जो कि समय– समय पर संशोधित होता रहता है, के अनुसार फल पदार्थो का उत्पादन, पैकिंग तथा अन्य स्वास्थ्य समबन्धी आवश्यकताओं पर कडी निगरानी रखनी चाहिए।

6. कारखाने में काम आने वाली मशीनें तथा उपकरण इस प्रकार बने हों जो आसानी से साफ किए जा सकें

7. उत्पाद बनाने के लिए ऐसी मशीन, उपकरण या बर्तन प्रयोग नहीं लाने चाहिए जो तांबा, पीतल या लोहे के बने हो।

8. कारखाने में प्रयोग आने वाला पानी पीने योग्य होना चाहिए। पानी का जीवाणुविज्ञान सम्बन्धी निरीक्षण अधिकृत प्रयोगशाला से कराना चाहिए।

9. कारखाने में पानी के निकास की सही व्यवस्था होनी चाहिए। कूड़े–कचड़े को दूर करने की पूर्ण व्यवस्था होनी चाहिए।

10. स्त्री तथा पुरुष श्रमिकों के लिए अलग–अलग शौचालय की व्यवस्था होनी चाहिए।

11. यदि पकाने का कार्य भट्टी में करना हो तो धुआं तथा चिनगारियां बाहर जाने की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

12. छूत की बीमारी से ग्रस्त श्रमिक को काम पर नहीं रखना चाहिए। अन्य श्रमिकों की वर्ष में दो बार डाक्टरी जाँच कराना आवश्यक है।

13. कारखाने में श्रमिकों के पहनने के लिए एपरन तथा टोपी की व्यवस्था होनी चाहिए।

14. यह ध्यान रखना आवश्यक है कि श्रमिक साफ–सुथरे तथा व्यवस्थित ढंग से काम करें।

साधन सामग्री

छोटे स्तर पर फल–सब्जी परिरक्षण के लिए निम्नलिखित सामान आवश्यक है:

क. मशीनें

1. डिब्बा बन्द करने वाली मशीन हाथ से चलाने वाली 1
2. क्राउन कार्किंग मशीन हाथ चलाने वाली 1
3. मिक्सी मशीन 1
4. गूदा या रस निकालने वाली मशीन 1
5. ग्राइंडिग मशीन मसाले कूटने के लिए 1
6. सुखाने की मशीन 1
7. पोलीथीन की थैली सीलबन्द करने की मशीन 1
8. लकडी का बास्केट प्रेस 1

ख. बर्तन

1. एल्युमिनियम के भगोने (25–30 लीटर क्षमता वाले) 6
2. एल्युमिनियम के भगोने 5, 10,15 तथा 20 लीटर क्षमता वाले 2 प्रत्येक
3. प्रेशर कुकर (20 लीटर क्षमता वाले) 1
4. बाल्टियॉ (20 लीटर क्षमता की) 6
5. एल्युमिनियम या स्टेनलेस स्टील की ट्रे या थाली 6
6. चम्मच बडे (स्टेन स्टील के) 10
7. चम्मच बडे (लकडी के) 6
8. चम्मच (चाय वाली) 12
9. मग (एल्युमिनियम या तामचीनी) 8
10. कीप फनल (तामचीनी या प्लास्टिक की) 6
11. बेसिन (इनामेल्ड) 5
12. प्लेट स्टेनलेस स्टील की छोटी 6
13. गिलास स्टेनलेस स्टील या कांच के 6
14. छलनी (एल्युमिनियम या स्टील की) 6
15. कडाही लोहे की (लाइपीलिग के लिए) 2
16. कारबाय या लकडी के पीपे (बैरल) 50
17. खरल 1

ग. काटने, छीलने तथा गोदने के लिए

1. चाकू काटने के (स्टेनलेस स्टील) 10
2. चाकू छीलने के (स्टेनलेस स्टील) 10
3. चाकू कोर निकालने के (स्टेनलेस स्टील) 6
4. चाकू पिटंग के लिए 6
5. कांटे (गोदने के लिए) 10

घ. चीनी तथा नमक की मात्रा नापने के लिए

1. ब्रिक्स हाइड्रोलीटर 3
   (0–30)
   (30–60)
   (60–90)
2. रिफ्रक्टोमीटर 3
   (0–32)
   (28–58)
   (58–90)
3. बोमे हाइड्रोमीटर 1
4. थर्मामीटर 4

ड़. लकडी की मेज जिसकी सतह एल्युमिनियम की बनी हो2

(5′x 3′ x 3′)

च. सिरका बनाने के लिए

1. जेनरेटर (सिरका बनाने वाला) 1
2. घडा या चीनी मिट्टी का बर्तन (20–25 लीटर क्षमता वाला) 6

छ. अन्य सामान

1. बोतल (स्कवैश तथा अन्य पेय के लिए) आवश्यकतानुसार
2. बोतल (जैम, जैली तथा मार्मलेड) आवश्यकतानुसार
3. बोतल (कचैप) आवश्यकतानुसार
4. बोयाम अथवा बमृतबान आवश्यकतानुसार
5. क्राउन कार्क तथा अन्य ढक्कन आवश्यकतानुसार
6. डिब्बाबन्दी के लिए डिब्बे (विभिन्न आकार के) आवश्यकतानुसार
7. एपरन, तौलिया, डस्टर आवश्यकतानुसार
8. ब्रुश (बोतल धोने के लिए) आवश्यकतानुसार
9. रबर के दास्ताने आवश्यकतानुसार
10. चिमटा (डिब्बा पकडने के लिए) आवश्यकतानुसार
11. सिरका या एसिटिक अम्ल आवश्यकतानुसार
12. पोटैशियम मेटा–बाइ–सल्फाइट आवश्यकतानुसार

13. सोडियम बेंजोऐट आवश्यकतानुसार

14. इत्र तथा खाद्य रंग आवश्यकतानुसार

15. नमक आवश्यकतानुसार

16. चीनी आवश्यकतानुसार

17. गंधक का चूर्ण आवश्यकतानुसार

18. तराजू, छोटी तथा बडी आवश्यकतानुसार

अन्य साधन, उपकरणों एवं सामग्री की जिन फर्मो से प्राप्त किया जा सकता है उनके पते इस पुस्तक की परिशिष्ट में दिए गए है।

सारणीः पेय पदार्थो के लिए फल आदेश

उत्पाद	कुल घुलनशील पदार्थो (टी.एस.एस.) (प्रतिशत)	फल रस की न्यूनतम मात्रा (प्रतिशत)	प्रयोग में लाए जाने वाले फल के विशिष्ट गुण
सिरप (शरबत)	65	25	फल का रस स्वस्थ फलों से निकाला गया है। स्क्वैश, क्रस तथा शरबत में रस के साथ गूदा भी हो, कार्डियल निथरे हुए रस से बना हो। उत्पाद कें चीनी, साइट्रिक अम्ल तथा मान्यता प्राप्त खाद्य रंग, परिरक्षी पदार्थ एवं फल की सुगंध मिलाये जा सकते है।
स्क्वैश	40	25	
क्रस	55	25	
कार्डियल	30	25	
पास्तुरीकृत रस	प्राकृतिक	शत–प्रतिशत	
तुरन्त पिये जा सकने वाले पेय	10	5	
नेक्टर (पपीता)	15	20	
आम, कटहल, अमरुद			
नेक्टर (सन्तरा तथा अन्त्रास)	15	40	
बार्ली वाटर	30	25	

हमारे भारत में फलों एवं सब्जियों का 30–40 प्रतिशत भाग व्यर्थ चला जाता है। इसलिए फलों से पेय पदार्थ बनाने से न केवल यह व्यर्थ भाग कम होगा अपितु आमदनी में भी बढ़ोत्तरी होगी। फल केवल एक ही मौसम में प्राप्त होते है जबकि इनसे बने पेय पदार्थ वर्षभर उपलब्ध रहते हैं। अतः यह एक बहुत ही उम्दा व्यवसाय सिद्ध हो सकता है।

बुन्देलखण्ड में उन्नत पशुपालन की समस्यायें एवं समाधान

ए.बी. मजूमदार, कमल कटियार* एवं राकेश कुमार**

बुन्देलखण्ड क्षेत्र जलवायु, मृदा की दृष्टि से कृषि के साथ–साथ पशुपालन में भी भरपूर योगदान देता है यहाँ के किसान फसल उत्पादन के साथ–साथ भैंस, गाय तथा बकरी को भी पालते है तथा इन पशुओं से दुग्ध उत्पादन करते है। पशुओं के चारे की व्यवस्था मिश्रित खेती से पूरी कर ली जाती है तथा घरों पर गेंहूँ का भूसा, सूखी घास के अतिरिक्त हरे चारे की व्यवस्था भी कर ली जाती है। दुधारू गाय और भैसों को एक निश्चित अनुपात में दाना व हरा चारा मिलाकर खिलाया जाता है तथा सरसों की खली को भी खिलाया जाता है जिससे कि दुग्ध उत्पादन को बढ़ावा मिलता है।

उत्तर प्रदेश के बुन्देलखण्ड क्षेत्र के विभिन्न जनपद झाँसी, बाँदा, ललितपुर, हमीरपुर, चित्रकूट, महोबा तथा जालौन राज्य के दक्षिणी क्षेत्र में स्थित है जो क्षेत्रफल की दृष्टि से राज्य का 10.9 प्रतिशत है। यह 29.67 लाख हे0 क्षेत्र में फैला हुआ है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र के जलवायु अर्द्ध, आर्द्र शुष्क से शुष्क है। बुन्देलखण्ड सूखा कृषि क्षेत्र होने के कारण फसल उत्पादन में व्यवधान उत्पन्न होता है जो कृषि क्षेत्र में पिछड़ेपन का मुख्य कारण है। बुन्देलखण्ड में बंजर भूमि अधिक है अतः इस क्षेत्र में कृषि के साथ–साथ पशुपालन पूरक की तरह कार्य करते है। मिश्रित खेती (कृषि के साथ पशुपालन) बुन्देलखण्ड क्षेत्र के किसानों के लिये एक प्रमुख उद्यम है। इस क्षेत्र के अधिकतर किसान अतिरिक्त आय के लिये पशु पालन करते है जिसमें भैंस, गाय तथा बकरी की मुख्य भागीदारी है प्रति बुवाई हेक्टेयर इन पशुओं की औसत संख्या 2.5 है परन्तु पशुओं का दुग्ध उत्पादन राज्य के दूसरे हिस्सों से काफी कम है। इस क्षेत्र के कुल पशुधन का 52 प्रतिशत गाय है जबकि बकरी एवं भैंस 21 प्रतिशत तथा 22 प्रतिशत क्रमशः है गाय तथा बकरी को चराई से आहार का मुख्य भाग मिलता है जबकि भैंस को चोरी के डर से अधिकतर पशुशाला में बांधकर खिलाते है। घर पर गेंहूँ का भूसा, कड़बी, सूखी घास इत्यादि दी जाती है सिर्फ दुधारू गाय व भैंसो को कम मात्रा में हरा चारा व दाना मिला कर दिया जाता है जो पर्याप्त नहीं होता है। खिलायें जाने वाले दाने व खली की मात्रा किसान के घर पर उनकी उपलब्धता पर निर्भर करती है अतः पशु उत्पादकता पर संतुलित आहार के अभाव से विपरीत प्रभाव पड़ता है उदाहरण हेतु अधिक दूध देने वाली भैंस को सरसों की खली की जगह पर बिनौला की खली ज्यादा लाभप्रद रहती है। हरे चारे की मात्रा नगण्य रहती है। संतुलित आहार व हरे चारे की कमी के कारण से इस क्षेत्र की दुग्ध उत्पादन क्षमता बहुत कम है जो राज्य के कुल दुग्ध उत्पादन का लगभग 6 प्रतिशत है। अतः यह चिन्ता का विषय है जिसका समाधान आवश्यक है ।

बुन्देलखण्ड के पशुपालन के पिछड़ेपन के जिम्मेदार कारण तथा समाधान

बुन्देलखण्ड के अधिकांश पशु अनुपयोगी एवं कम उत्पादकता वाले है अतः पशुपालन व्यवसाय कम लाभकारी है जिससे किसानों की इस व्यवयसाय में रूचि कम हो रही है। हरे एवं पोषक चारे की कमी, पशुओं में नस्ल सुधार का अभाव, व्यवस्थित चारागाहों का अभाव, पशुपालन हेतु प्रजनन की समुचित व्यवस्था न होना तथा दुग्ध का सही मूल्य न मिलना इसके मुख्य कारण है। अतः निम्न उत्पादकता वाले पशुओं का बधियाकरण, हरे चारे की उत्पादन व संरक्षण की व्यवस्था, स्थाई चरागाहों का निर्माण व विकास, अच्छी प्रजनन व पशु चिकित्सा तथा टीकाकरण की व्यवस्था तथा किसानो में जागरूकता द्वारा स्थिति में सुधार किया जा सकता है। बुन्देलखण्ड के लिये अभिशाप अन्ना प्रथा का प्रचलन तथा छुट्टा चराने की व्यवस्था, अन्नाप्रथा में किसान पशुओं को गर्मियों में स्वतः चरने के लिये छोड़ देते है। इस प्रथा से जायद की पूरी फसल तथा खरीफ की कुछ मात्रा में फसल छुट्टा चरने वाले पशुओं से नष्ट हो जाती है। इस प्रथा से चरागाह नष्ट हो रहे है, चरागाहों व वृक्षों के विनाश से चारा व वन सम्पदा घट रही है। बुन्देलखण्ड के पर्यावरण असंतुलन का मुख्य कारण ही छुट्टा चराई व्यवस्था है इस प्रथा से पशु कुपोषण के शिकार होने के साथ रोगो के भी शिकार हो जाते है। प्रथा को बंद करके ही किसान बागवानी तथा वृक्षारोपण कर सकता है जिससे भूमि और जल का भी संरक्षण होता है। यह प्रथा सिर्फ बुन्देलखण्ड में अनुत्पादक गौवंश द्वारा है अतः उत्पादक पशुओं का पालन कर, अनुपयोगी नर पशुओं का बधियाकरण करके तथा जन साक्षरता द्वारा इस प्रथा को खत्म किया जा सकता है। अतः अन्नाप्रथा के

भूतपूर्व प्रधान वैज्ञानिक, पौध पशु संबंध विभाग भारतीय चरागाह एवं अनुसंधान संस्थान, झाँसी।
**प्रधानाचार्य, राजकीय कृषि विद्यालय चिरगॉव झाँसी, **पशुचिकित्साधिकारी, राजकीय पशु चिकित्सालय, विद्यालय चिरगाँव झाँसी*

अभिशाप से बचने के लिये पशुओं विशेषकर गौवंश को खुला छोड़ने के बजाय उन्हे बाँधकर बहुफसलीय कृषि करनी होगी, बेकार पड़ी बंजर भूमि पर चारा वृक्षों का रोपण तथा चरागाहों पर संतुलित चराई करनी होगी। इसके साथ–साथ सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा गौशाला का निर्माण परती भूमि का विकास इत्यादि भी अपेक्षित है।

उन्नत पशुधन विकास व प्रबन्धन

उत्कृष्ट दुग्ध उत्पादन हेतु स्वस्थ व अच्छे नस्ल के पशुधन, पौष्टिक चारा व चिकित्सा मुख्य आधार हैं। सीमित हरे चारे की उपलब्धता के कारण दुग्ध उत्पादन में कमी आती है किसानो में जागरूकता के अभाव में बिना कुट्टी के ज्वार व मक्का चारा तथा कड़बी दी जाती है पशुओं को हमेशा कुट्टी करके ही चारा देना चाहिये जिसमें आहार की ग्रहणता बढ़ती है तथा पशु ज्यादा खाते है। बुन्देलखण्ड में पशुओं के लिये चारे का क्षेत्रफल बढ़ाने के लिये कृषि योग्य भूमि के पर्याप्त अवसर नहीं है अतः इस क्षेत्र में फैली अनुपयुक्त भूमियों की उत्पादकता बढ़ाते हुये वैज्ञानिक तरीके से चरागाह प्रबन्धन कर चारा उत्पादन करने की आवश्यकता है। चारे के लिये परती, बंजर एवं पथरीली भूमि का विकास पशुधन विकास के नये आयाम को रेखांकित करता है ।

अनुपयुक्त भूमि में परम्परागत खेती सिंचाई के साधनों के अभाव में एक जोखिम भरा प्रयास है ऐसी भूमि पर जीविकापार्जन हेतु कृषि योग्य भूमि के अभाव में पशुपालन एक महत्वपूर्ण अजीविका का साधन है। उपलब्ध बेकार व बंजर भूमि पर उन्नत चरागाह प्रबन्धन अपनाकर अधिक पशुधन उत्पादन प्राप्त कर सकते है। इस अनुपयोगी भूमि पर पशुपालन व्यवसाय मुख्यतया छोटे एवं सीमान्त कृषको के हाथ में है। इन भूमियों पर विभिन्न घासें जैसे सूडान घास, दलहनी घास जैसे स्टायलो तथा चारा वृक्षों को लगाने की विभिन्न तकनीक एवं विधियाँ चरागाह संस्थान, झाँसी द्वारा विकसित की गयी है। सूबबूल से पौष्टिक हरा चारा प्राप्त होता है। चारा वृक्षों से प्राप्त पत्तियाँ हरे चारे की आपूर्ति करती है एवं पशुओं को कमी के दिनो के लिये पौष्टिक चारा प्रदान करती है। कृषि वानिकी पद्वति द्वारा बुन्देलखण्ड क्षेत्र में चारा उत्पादन के साथ–साथ फल व लकड़ी का उत्पादन करके किसान की आय में वृद्धि की जा सकती है। सिल्वीपाश्चर विधि से वर्ष भर पशुओं को हरा चारा प्राप्त होता रहता है। बकरियों हेतु बेर व अन्य झाड़ियॉ लगाकर वृक्षों के सानिध्य में घासों का भी सफलतापूर्वक पैदावार की जा सकती है। चारा उद्यान पद्धति से ऑवला, बेर, करौंदा व नींबू जातीय वृक्षों की खेती कर चारा फसलें लगाकर पशुओं हेतु अतिरिक्त चारा प्राप्त किया जा सकता है। बुन्देलखण्ड जैसे गर्म प्रदेश में जहाँ मई जून में अधिक गर्मी व पानी की कमी से चारे की समस्या अधिक होती है, ऐसे समय में सूबबूल, सिरस, शहतूत, अंजन, बिलायती बबूल, पीपल इत्यादि चारा वृक्ष हरा चारा पशुओं हेतु प्रदान करते है।

बुन्देलखण्ड में भेड़–बकरी पालन एक लाभकारी व्यवसाय

बुन्देलखण्ड के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का करीब 11 प्रतिशत परती एवं बंजर भूमि है। भेड़ व बकरी पालन का व्यवसाय परती व बंजर भूमि वाले क्षेत्रों के लिये विशेष लाभप्रद है। सीमान्त व लघु किसान बकरी पालन से अपनी आय बढ़ा सकते है। इस क्षेत्र में फैले परती भूमि का उपयोग भेड़ बकरी के चरागाह के रूप में विकसित करने की आवश्यकता है। उन चरागाहों में झाड़ियों की बहुतायत है जो बकरी पालन के लिये उपयोगी है। इन परती भूमि पर बकरी पालन में कम खर्च लगता है भेड़ बकरी पालन पर लागत कम है तथा जोखिम कम उठाना पड़ता है। बुन्देलखण्ड में भेड़ बकरी का उत्पादन बढाकर किसानों की आय दुगनी की जा सकती है क्योकि बकरे की मांस की माँग दिन–प्रति दिन बढ़ती जा रही है। यहाँ पर भेड़ बकरियाँ चरागाहो में चरने के लिये छोड़ दी जाती है। जहाँ प्रचुर मात्रा में वनस्पतियाँ तथा झाड़ियाँ बकरियों के लिये उपलब्ध रहती है विशेषकर मानसून के दिनों में एक पशु पेड़ की पत्तियों को भी चाव से खाते है। आवश्यकता सिर्फ इन परती भूमियों का उन्नत चरागाहों के रूप मे विकसित करने की हैं। जिससे भेड़ बकरी को पौष्टिक चारा कम लागत में प्राप्त हो सके। अतः सक्षेप में पशुपालन की प्रमुख समस्याए निम्नवत् है जिनका समाधान आवश्यक है–

(1) चारे की अपर्याप्त उपलब्धता।

(2) उन्नत चरागाह का अभाव।

(3) संतुलित आहार का अभाव व कम जानकारी ।

(4) सुनियोजित प्रजनन प्रणाली का अभाव ।

(5) दोषपूर्ण रख–रखाव।

(6) समुचित बिक्री व्यवस्था का अभाव।

(7) पशुपालकों में तकनीकी ज्ञान की कमी।

(8) सहकारिता एवं जन सहभागिता का अभाव ।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र बंजर और पथरीली भूमि से परिपूर्ण है परन्तु भूमियों पर चरागाह को बनाया जा सकता है तथा पशुओं को उपयुक्त मात्रा में चारा उपलब्ध कराया जा सकता है जिससे कि दुग्ध उत्पादन में बढ़ोत्तरी होगी तथा किसानों की आय को दुगनी किया जा सकता है।

बुन्देलखण्ड में व्यवसायिक मुर्गीपालन को उन्नतिशील बनाने हेतु सम्भावनाऐं

गोविन्द कुमार चौधरी[1] एवं एस.पी. सिंह[2]

बुन्देलखण्ड क्षेत्र की जलवायु शुष्क होने के साथ–साथ फसल उत्पादन के लिये बहुत ही उपयोगी है। जल की उपलब्धता बहुत ही सीमित होने के कारण वर्षा आधारित फसलों की ज्यादा सम्भावनायें होती है। यहाँ के किसान फसल उत्पादन के साथ–साथ मुर्गीपालन को भी व्यवसाय का अच्छा स्रोत मानते है जिससे कि वे अण्डे उत्पादन के साथ–साथ मुर्गी के माँस की पूर्ति भी कर लेते है तथा किसानों की आय को बढ़ाने में मदद मिलती है।

बुन्देलखण्ड भारत का अति महत्वपूर्ण क्षेत्र है। यह क्षेत्र उत्तर प्रदेश के पश्चिमी क्षेत्र के 7 जिले तथा मध्य प्रदेश उत्तरीय क्षेत्र के 6 जिले हैं। जिसके अन्तर्गत लगभग 70 हजार वर्ग मीटर भू–क्षेत्र है। उनके जलवायु शुष्क एवं फसलों के लिए बहुत ही अनुउपर्युक्त है। क्योंकि जल की उपलब्धता बहुत सीमित है तथा वर्षा आधारित फसलों की सम्भावनाऐं है। जिस कारण अत्यधिक भूमि असंचित रह जाती है। ऐसी परिवेश में किसानों की आय बढ़ाने का प्रमुख श्रोत मुर्गीपालन ही एक महत्वपूर्ण साधन है। इस क्षेत्र में मुर्गीपालन व्यवसाय बहुत तेजी से आगे बढ़ रहा है और लोगों के रोजी रोटी का साधन बन गया है। गरीबी उन्मूलन एवं बेरोजगार नवयुवकों के लिए यह एक अच्छा व्यवसाय साबित हो रहा है। नाबार्ड एवं अन्य लीड बैंक इस व्यवसाय को लोकप्रिय बनाने हेतु ऋण भी मुहैया करा रहे हैं। लेकिन साधन सम्पन्न होते उत्तर प्रदेश में आवश्यकता के अनुरुप उत्पादन न होने के कारण आज भी दक्षिण भारत से अण्डे एवं मुर्गी के मांस की पूर्ति की जा रही है। अतः प्रदेश में मुर्गी उत्पाद को बढ़ाने के लिए निम्नलिखित घटकों पर ध्यान देना आवश्यक है।

उन्नतशील प्रजातियाँ : आजकल अनुसंधान केन्दों एवं कुछ प्राइवेट संस्थाओं ने अंडे वाली ऐसी उन्नतिशील प्रजातियाँ विकसित की है जिनका वार्षिक उत्पादन 300 से अधिक अण्डो का है जो देशी मुर्गियों की अपेक्षा 4–5 गुना अधिक हैं उदाहरणार्थ– केन्द्रीय पक्षी अनुसंधान संस्थान, बरेली द्वारा विकसीत कैरी–प्रिया, कैरी–सोनाली। इसी तरह मांस वाली (ब्रॉयलर / क्रॉयलर)

	अवयव	चूजे 0-8 सप्ताह	बढ़ने वाले 9-20 सप्ताह	अण्डे वाले 20 सप्ताह से ऊपर	मांस वाले चूजे 0-6 सप्ताह	मांस वाले पक्षी 6 सप्ताह से ऊपर
1.	पीला मक्का	46 प्रतिशत	50 प्रतिशत	54 प्रतिशत	58 प्रतिशत	65 प्रतिशत
2.	चोकर या राइस ब्रान	10 प्रतिशत	18 प्रतिशत	17 प्रतिशत	–	–
3.	मूंगफली / सोयाबीन / तिल (मिश्रित अथवा मूंगफली)	25–30 प्रतिशत	15–17 प्रतिशत	14–16 प्रतिशत	22–25 प्रतिशत	20–22 प्रतिशत
4.	मछली का चूरा	5–8 प्रतिशत	5 प्रतिशत	3 प्रतिशत	10 प्रतिशत	5 प्रतिशत
5.	खनिज मिश्रण	3 प्रतिशत	4 प्रतिशत	5 प्रतिशत	3 प्रतिशत	3 प्रतिशत
6.	हड्डी / संगमरमर का चूरा	–	–	1.5 प्रतिशत	–	–
7.	शीरा	3–6 प्रतिशत	4–7 प्रतिशत	6–7 प्रतिशत	3–6 प्रतिशत	3–6 प्रतिशत
8.	विटामिन ए,बी2+डी3	15–20 ग्रा0 / कि0	15–20 ग्रा0 / कि	15–20 ग्रा0 / कि	15–20 ग्रा0 / कि	15–20 ग्रा0 / कि
9.	नैफ्टीन (200)	200 ग्रा0 / कि0 (प्रथम 10 दिन)	–	–	200 ग्रा0 / कि0 (प्रथम 10 दिन)	
10.	काक्सी दवा	50 ग्रा0 / कि0 (8–10 सप्ताह)	–	–	50 ग्रा0 / कि (8–10 सप्ताह)	50 ग्रा0 / कि
11.	एंटीवायोटिक टी.एम.50, ओरोफैक आदि	50 ग्रा0 / कि0	50 ग्रा0 / कि0	50 ग्रा0 / कि0	50 ग्रा0 / कि0	50 ग्रा0 / कि0

[1]*विशय वस्तु विशेषज्ञ, आई.सी.ए.आर.–आई.आई.वी.आर. कृषि विज्ञान केन्द्र, बेजवा, भदोही (उ.प्र.):*
[2]*प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, भेषज गुण, पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान महाविद्यालय, पंतनगर (उत्तराखंड)*

प्रजातियाँ 6–7 सप्ताह में 1.50 कि.ग्रा. मांस दे रही है, जैसे – कैरिब्रो धनराज एंव कैरिब्रो मृतुंजय । घर के पिछवाड़े मुर्गी पालन हेतु उपयुक्त प्रजातियाँ (कैरी–श्यामा, कैरी–निर्भिक, कैरी–देवन्द्रा, वनराजा) 150 अण्डे तथा उसके बाद 2.5–3.0 कि0ग्रा0 मांस देने की क्षमता रखती हैं।

संतुलित अहार :कुक्कुट आहार उनकी अवस्थाओं के अनुसार अलग–अलग होते है जैसे चूजे, बढ़ने वाले, अण्डे वाले एवं मांस वाले आहार आदि। इन सभी आहारों के लिए फारमूले भी अलग–अलग होते हैं, किन्तु यह कोई निश्चित फारमूला नहीं होता और अवयव की स्थानीय उपलब्धता पर निर्भर करता है। एक सर्वमान्यफार्मूला दिया जा रहा है जिसका प्रयोग मुर्गी पालक कर सकते हैं।

आजकल मुर्गियों का आहार अलग–अलग श्रेणीयों केलिए विभिन्न कम्पनियों द्वारा बनाये जा रहे है और बाजार में उचित दाम पर उपलब्ध है।

आवास प्रबंधन

हमारे प्रदेश में मई–जून की अत्याधिक गर्मी (40से0 अधिक) तथा दिसम्बर–जनवरी की ठंढ़क (15से0 कम) भी मुर्गी की उत्पादकता को 20 प्रतिशत तक नुकसान करती हैं इसलिए मुर्गी पालक को चाहिए कि मुर्गी घर के दक्षिण तथा पश्चिम दिशा में शहतूत (मलवारी) के वृक्ष लगाये जो गर्मी में छाया तथा जाड़े में पत्तिया गिर जाने के पश्चात् धूप दें।इसके आलावा पर्दे, पानी का छिड़काव, छत पर घास फूस बिछाकर एवं आवश्यकतानुसार खिड़कियों को खोलकर अथवा बन्द रखकर तापमान पर नियंत्रण करना चाहिए।

छोटे चूजों (0–8 सप्ताह) का रख–रखाव

तापमानः छोटे चूजों के पालन में तापमान का बड़ा महत्व है। शुरूवात में ताप 350से0 रखे तत्पश्चात प्रति सप्ताह 30से0 घटाते हुये 210से0 तक रखना चाहिए। इसके लिए हीटर बल्ब या इंफ्रारेड बल्ब का प्रयोग कर सकते हैं।

जगहः 0 से 4 सप्ताह तक 1/2 वर्गफुट तथा 5 से 8 सप्ताह तक 1 वर्गफुट प्रति चूजा स्थान दे।

दानें की जगहः 0 से 4 सप्ताह तक 1 इंच तथा 5 से 8 सप्ताह तक दो इंच

पानी के बर्तनः 50 चूजों के लिए पानी का एक बर्तन पर्याप्त होता है।

बिछावनः चूजों को पालने में 2–3 इंच लकड़ी का सूखा बुरादा/धान की भूसी आदि बिछावन के रूप में प्रयोग करना चाहिए।

रोशनी : कमरे में पर्याप्त रोशनी रातभर होनी चाहिए।

सफाईः बीमारियों से बचाव के लिए पानी व दानों के बर्तन को साफ एव बिछावन को सूखा रखे।

अंडा उत्पादन वाली मुर्गियों (9–20 सप्ताह)का रखरखावः

जगहः अंडा देने वाली मुर्गियों को डेढ़ से दो वर्गफुट प्रति मुर्गी जगह दे। एक 3000 वर्गफुट वाले शेड में 1500 से 2000 मुर्गी रखे जा सकते है।

दानें की जगहः प्रति मुर्गी 3 इंच खाने की जगह होनी चाहिए अर्थात 100 मुर्गियों के लिए लम्बे वाले दाने के 16–20 बर्तन होने चाहिए।

पानी के बर्तनः 100 मुर्गियों के लिए लगभग 30–35 ली. पानी की जरूरत प्रति दिन पड़ती है।

बिछावनः बिछावन3–4 इंच तक गहरा होना चाहिए। बिछावन सूखा होना चाहिए।

रोशनी : 9–20 सप्ताह की उम्र की मुर्गियों को रात में रोशनी नहीं देना चाहिए। रोशनी थोड़ा–थोड़ा कम करके हफ्ते भर में बिल्कुल बंद कर दें। ऐसा इसलिए कि अचानक किए गये परिवर्तन का असर मुर्गियों पर न हो।

सफाईः बीमारियों से बचाव के लिए पानी व दानों के बर्तन को साफ एवं बिछावन को सूखा रखे।

अंडा देने वाली मुर्गियों (20 हफ्ते से 1 वर्ष) का रख-रखावः

जगहः दो से ढाई वर्गफुटप्रति मुर्गी, सफेद यानी छोटी आकार तथा 3.5 वर्गफुट रंगीन अर्थात बड़ी आकार के मुर्गियों के लिए आवश्यक होती है।

दानें की जगहः ट्रफ टाइप फीडर में 4–5 इंच प्रति मुर्गी तथा लटकते वाले फीडर में 20 सफेद/छोटी तथा 15 रंगीन/बड़ी आकार के मुर्गियों के लिए पर्याप्त होता है।

पानी के जगहः 50 मुर्गियों के लिए एक बड़ा पानी का बर्तन या 100 मुर्गियों की लिए 6–8 फीट लम्बी पानी की नाली देनी चाहिए।

घोंसले : प्रति 5 मुर्गियों पर एक घोंसला अण्डा देने के लिए होना चाहिए। घोंसले का आकार 1 वर्गफुट तथा 6–9 इंच गहरा होना चाहिए।

रोशनी : मुर्गियों को कुल 16 घंटे (दिन + रात) की रोशनी की आवश्यकता होती है।

सफाईः बीमारियों से बचाव के लिए पानी व दानों के बर्तन को साफ एव बिछावन को सूखा रखे।

पिंजरे में अंडे देने वाली मुर्गी का पालनः

अण्डा उत्पादन के लिए लोहे के पिंजरे काफी लोकप्रिय हो रहे है इसके कुछ लाभ भी है। विशेष जानकारी के लिए मुर्गीपालक अपने निकट के पिंजड़े में किये जा रहे मुर्गीपालन फार्म का अवलोकन अवश्य कर लेना चाहिए।

घर के पिछ्वाड़े मुर्गीपालन : इसमें 20–25 मुर्गियों के लिए हवायुक्त दरबा बनाते है। मुर्गियाँ दिन में बाहर घूमती है और रात में दरबे में रहती है। इस विधि में मुर्गियाँ दिनभर बाहर घूम कर घर का जूठन, कीड़े–मकोड़े एवं मुलायम पत्तियाँ खाती है। प्रत्येक मुर्गी को 2–2.5 वर्गफीट जगह दरबे में दी जाती है।

संक्रामक रोगों से बचाव : बचाव इलाज से कारगर है यह कहावत मुर्गी पालन में सटीक बैठती है अगर एक बार किसी बीमारी का संक्रमण हो गया तो पूरा समुदाय नष्ट हो सकता है। अतः इनसे बचाव के लिए टीकाकरण ही सबसे सस्ता एवं कारगर उपाय है।

टीकाकरण सारिणी

उम्र	टीका	खुराक/मात्रा	प्रयोग	प्रजाति
1–7 दिन	एच0बी0टी0 स्ट्रेन (माक)	0.2 एम0एल0 एक बूँद।	गर्दन या आँख में	अंडे वाली प्रजाति
14 दिन	आई0बी0डी0 इण्टरमिडिएट	'' ''	'' ''	अंडे व मांस दोनों प्रजाति
28 दिन	आई0डी0 एफ0 लसोटा	'' ''	'' ''	'' ''
35 दिन	आई0बी0डी0 इण्टरमिडिएट	'' ''	'' ''	'' ''
42 दिन	चेचक	'' ''	पंखे के नीचे मांस में	अण्डे वाली
8–10 सप्ताह	आर0डी0आर–2 बी स्ट्रेन	0.5 एम0एल0	मांस में	'' ''
18 सप्ताह	ई0डी0 एस–76	'' ''	'' ''	'' ''
20 सप्ताह	आर0डी0 इनएक्टीवेटेड	'' ''	'' ''	'' ''

अन्य रोगों से बचाव

1. **सफेद दस्त/बैसिलरी व्हाईट डायरिया/प्लुलोरम बीमारी :** यह रोग मुख्यतः चूजों में होता है, जिससे काफी अधिक संख्या में चूजों की मृत्यु होती है। बाद में यह बड़ी मुर्गियों में भी फैलता है। रोग से ग्रसित मुर्गियों के अंडों में भ्रूण मर जाते है। रोगी मुर्गियों की बीट चूने जैसी सफेद होती है तथा मल विसर्जन के समय दर्द होता है, कुछ पक्षी अंधे या लंगड़े भी हो जाते हैं। चूजे एवं मुर्गियों का पिछला भाग दस्त के कारण चिपक जाता है।

   उपचारः टेट्रासाइक्लिन / लिक्सेन / फयूरासोल पाउडर – यह दवा सभी पशुदवा दुकान में उपलब्ध रहती है। 20 चूजे अथवा 5 बड़ी मुर्गियों के लिये एक कप पानी (50 एम0 एल0) में 2 चुटकी (2 ग्राम) दवा घोले एवं सिरिंज द्वारा बीमार चूजों को दो–दो बूँद एवं बड़ी मुर्गियों को पाँच–पाँच तीन दिनों तक लगातार पिलाने से बीमारी दूर की जा सकती है। पीने के पानी में दवा घोलकर भी पिलायी जा सकती है। इस पद्धति में 40 चूजे अथवा 10 बड़ी मुर्गियों के लिए एक कसला पानी (1 लीटर) में 4 चुटकी (4 ग्राम) दवा मिलाकर मुर्गी घर में रखे पानी बर्तन में दवा डाल दें एवं प्रभावित चूजे या मुर्गियों को अपनी इच्छानुसार इस पानी को पीने दें। ऐसा तीन दिनों तक करें।

2. **खूनी पेचिश/खूनी दस्त/कॉक्सीडियोसिस :** यह रोग मुख्यतः पक्षी रखने के स्थान पर नमी के कारण होता है। सबसे प्रमुख लक्षण खूनी दस्त होता है। प्रभावित चूजे खाना नहीं खाते हैं, पंखों को नीचे झुकाकर रखते हैं, कलगी का रंग भूरा होने के साथ–साथ, अंडोत्पादन कम हो जाता है। इस रोग से चूजे काफी कमजोर हो जाते हैं एवं आंख मुंदकर बैठ जाते हैं। इस बीमारी से काफी बड़ी संख्या में पक्षियों की मृत्यु हो जाती है। यह रोग पक्षियों को करीब तीन सप्ताह की आयु में लगता है जो बाद में बड़ी मुर्गियों में भी फैलता है।

   उपचार :कॉक्सीडिया रोधक दवाये जैसे एम्प्रोसोल, सल्फाक्वीनॉक्सेलिन, सल्फामीराजीन आदि बाजार में उपलब्ध है। दवा को ऊपर दर्शायी गई मात्रा के अनुसार दाने में मिलाकर तीन दिनों तक प्रभावित मुर्गियों को देना चाहिए। साथ–साथ विटामिन एवं खनिज मिश्रण को पानी में मिलाकर देने से भी रोग को नियंत्रित किया जा सकता है।

3. **मुर्गियों में सर्दी जुकाम :** ठंड के समय, वर्षा में भीगने पर या खुले में बाहर रहने पर मुर्गियों को खास कर चूजों को यह बीमारी हो जाती है। मुर्गियों का सुस्त रहना, कलगी में

नीलापन, दाना पानी कम खाना एवं चोंच से पतला स्राव करना प्रमुख लक्षण है। चूजे एवं मुर्गियाँ पास–पास आकर झुंड बना लेते हैं। इससे यह बीमारी और भी फैलती है।

उपचारः टेट्रासाइक्लिन, स्टेक्लिन आदि की 1/4 टैबलेट सुबह–शाम खिलावें। सल्फाडिमीडीन (16 प्रतिशत घोल) 10 मि.ली., 1 लीटर पानी में मिलाकर पिलावें।

यह सर्वविदित है कि बुन्देलखण्ड क्षेत्र की जलवायु और मृदा फसल उत्पादन के लिये उपयुक्त नहीं है इसलिये यहाँ के किसान फसल उत्पादन के साथ–साथ मुर्गीपालन भी करते है मुर्गीपालन से अण्डे एवं माँस उत्पादन करते है तथा अपनी आय को बढ़ाते है। मुर्गीपालन एक ऐसा व्यवसाय है जिसको अपनाने से ज्यादा से ज्यादा आय कमायी जा सकती है तथा बुन्देलखण्ड क्षेत्र में मुर्गीपालन व्यवसाय लोगों के लिए रोजी–रोटी का साधन बन गया है। मुर्गीपालन गरीब एवं बेरोजगार नव–युवकों के लिए एक अच्छा व्यवसाय भी सिद्ध हो रहा है। मुर्गीपालन व्यवसाय शुरू करने के लिये भारत सरकार एवं अन्य बैंक तरह–तरह के ऋण भी मुहैया करा रहे है जिसका लाभ उठाकर बुन्देलखण्ड के किसान अपनी आय को दुगनी कर सकते है।

Darpan Printers
&
Lamination